सम्मतियाँ

"···यह पुस्तक कला के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।"

जे. डी. गोन्धलेकर
डीन, सर जे. जे. स्कूल ऑफ़ आर्ट
बम्बई

"···मेरे विचार से यह पुस्तक सेकेण्डरी तथा बेसिक स्कूलों के कला-अध्यापकों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी।"

आर. चक्रवर्ती
प्रिन्सिपल, गवर्नमेण्ट कॉलेज
ऑफ़ आर्ट एण्ड क्राफ़्ट
कलकत्ता

"···ट्रेनिंग कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है।"

एस. वाई. हार्वे
प्रिन्सिपल, गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कॉलेज
फॉर वीमेन
शिमला

कला की परख

लेखक
के. के. जसवानी
कला-प्राध्यापक, सेंट्रल इंस्टीच्यूट ऑफ़ एजूकेशन
दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली-८
"TEACHING AND APPRECIATION OF
ART IN SCHOOLS" के लेखक

१९५५
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

भूमिका

इस पुस्तक का उद्देश्य कला-शिक्षण के लिए व्यापक सौन्दर्य-बोध को उपस्थित करना है । कला की व्यापकता किसी चित्रशाला तक ही परिमित न रहकर वह हमारे सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करने वाली है । उसका क्षेत्र हमारे आन्तरिक जीवन से लेकर बाहरी जीवन— हमारे आवास, हमारी वेशभूषा, अलंकार आदि तक विस्तृत है ।

इस पुस्तक के दो महत्त्वपूर्ण भाग हैं । एक कला के सिद्धान्त और दूसरा भारतीय कला का संक्षिप्त इतिहास ।

इस पुस्तक की योजना इस प्रकार की गई है कि यह कला के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में रखी जा सके । इससे बुनियादी स्कूलों और विद्यालयों के शिक्षकों को भी कला के सम्बन्ध में पर्याप्त मार्ग दर्शन मिलेगा, ऐसी आशा है ।

लेखक जॉन टैट एण्ड पार्टनर्स लिमिटेड, लण्डन; ट्रैन्सलेटिंग आर्टस् इनकारपोरेटेड, न्यूयार्क; और कई संस्थाओं तथा चित्रकारों का बड़ा कृतज्ञ है जिनके सौजन्य से चित्र प्राप्त हुए हैं ।

के. के. जसवानी

विषय

चित्र-सूची

अध्याय १

कला और शिक्षण

कला शब्द के श्रवण मात्र से ही प्रथम वस्तु जो प्रत्येक जन-साधारण के दृष्टि-पथ में सम्मुख आ खड़ी होती है वह प्रायः होती है कोई चित्र अथवा मूर्ति। परन्तु कला के विषय में कितनी संकुचित है यह धारणा? कला शब्द केवल चित्रकला एवं मूर्तिकला तक ही सीमित न रहकर समस्त भाव-प्रकाशन से सम्बन्ध रखता है। यह भाव-प्रकाशन किसी भी रूप में हो सकता है। यहाँ तक कि संगीत, नाट्य और नृत्य आदि भी इससे अछूते नहीं। पर इतना अवश्य है कि कोई भी शिक्षक जो शिक्षा का उद्देश्य सुन्दर जीवन का निर्माण मानता है वह चित्रकला अथवा मूर्तिकला की उपेक्षा नहीं कर सकता। कला को स्कूलों के पाठ्यक्रमों में स्थान देने का प्रयोजन यही है कि यह बालकों के मानसिक विकास व शिक्षण का मूल आधार सिद्ध हो, उनके सम्मुख यह उच्च कोटि के धार्मिक आदर्शों को प्रस्तुत करे। उद्देश्यहीन भावनाओं के उमड़ते हुए समुद्र को समुचित मोड़ दे। प्राचीन सांस्कृतिक भण्डार के द्वार खोल दे तथा हस्त-कौशल एवम् सूक्ष्म निरीक्षण में प्रत्येक को कुशल बना दे।

कला वास्तव में हमारे जीवन के प्रत्येक स्तर को आवृत्त किये हुए

चित्र-सूची

अध्याय १

कला और शिक्षण

कला शब्द के श्रवण मात्र से ही प्रथम वस्तु जो प्रत्येक जन-साधारण के दृष्टि-पथ में सम्मुख आ खड़ी होती है वह प्रायः होती है कोई चित्र अथवा मूर्ति। परन्तु कला के विषय में कितनी संकुचित है यह धारणा? कला शब्द केवल चित्रकला एवं मूर्तिकला तक ही सीमित न रहकर समस्त भाव-प्रकाशन से सम्बन्ध रखता है। यह भाव-प्रकाशन किसी भी रूप में हो सकता है। यहाँ तक कि संगीत, नाट्य और नृत्य आदि भी इससे अछूते नहीं। पर इतना अवश्य है कि कोई भी शिक्षक जो शिक्षा का उद्देश्य सुन्दर जीवन का निर्माण मानता है वह चित्रकला अथवा मूर्तिकला की उपेक्षा नहीं कर सकता। कला को स्कूलों के पाठ्यक्रमों में स्थान देने का प्रयोजन यही है कि यह बालकों के मानसिक विकास व शिक्षण का मूल आधार सिद्ध हो, उनके सम्मुख यह उच्च कोटि के धार्मिक आदर्शों को प्रस्तुत करे। उद्देश्यहीन भावनाओं के उमंडते हुए समुद्र को समुचित मोड़ दे। प्राचीन सांस्कृतिक भण्डार के द्वार खोल दे तथा हस्त-कौशल एवम् सूक्ष्म निरीक्षण में प्रत्येक को कुशल बना दे।

कला वास्तव में हमारे जीवन के प्रत्येक स्तर को आवृत्त किये हुए

है। शिल्प-कला के सुन्दर नमूनों से विहीन हमारे शहर केवल मात्र कटघरों के समूह-से ही प्रतीत होंगे। मूर्तिकला के बिना सुन्दर नक्काशीयुक्त महल, मन्दिर तथा मुद्राओं का दर्शन भी असम्भव हो जाता, इसी प्रकार यदि आज चित्रकला न होती तो क्या कभी हम आधुनिक युग के सचित्र पत्र व पत्रिकाओं के दर्शन भी कर पाते ? आकर्षक विज्ञापन आदि का तो कहना ही क्या। काग़ज़ के सुन्दर-सुन्दर भिन्न प्रकार के छपे हुए नोट एवम् टिकिट भी इसी की देन हैं। रेखा तथा रंगों की सामग्री यदि कला ने हमें प्रदान न की होती तो आज हमारे ग़ालीचे, कालीन, पर्दे, पोशाक इत्यादि सब शोभाहीन हो जाते। वस्तु-निर्माण-कौशल के बिना हमारे घरों में सजावट के सामान के स्थान पर लकड़ी के टुकड़ों का ढेर ही दिखाई देता, हमारे खान-पान के पात्र अपना सब आकर्षण खो बैठते। सौन्दर्ययुक्त रंग-बिरंगी टोकरियों तथा ख़ूबसूरती से बनाई गई छड़ियों का नितान्त अभाव किस की आँखों में न खटकता ? आधुनिक युग के आकर्षक रत्नखचित आभूषणों के आकार की तो आप कल्पना भी नहीं कर पाते। उनके स्थान पर आप देखते वही केवल रंग-विरंगे बीजों की, हड्डियों के टुकड़ों की तथा सीपियों की लम्बी-लम्बी मालायें। घरों में प्रकाश देने वाले सुन्दर दीपकों के स्थान पर पाते आप उपलों के ढेर तथा उनमें धीरे-धीरे सुलगती हुई आग के कुछ कण। संक्षेप में आप अपने सामने देखते एक अत्यन्त प्राचीन व अविकसित सभ्यता का अशोभनीय प्रदर्शन जिसको आप आज देख पायें तो घृणा तथा क्षोभ से आँखें बन्द कर लें।

कला-शिक्षण से अभिप्राय यह नहीं कि सब बच्चे कला को ही अपना व्यवसाय चुनें वल्कि यह शिक्षा तो उनके जीवन-निर्माण के लिए है, जिसका अर्थ है कि वह सौन्दर्य के पारखी वनें तथा उनको जीवन में सौन्दर्य का वोध हो। यह केवल कुर्सियों के घड़ने वाले वढ़ई ही न वन जायँ, चित्रों को तूलिकाओं से रंगने मात्र के चित्रकार न वनें, वरन् उनमें वह शक्ति हो कि वह अपने लिए उत्तम-से-उत्तम तथा शोभामय

सामान का चुनाव कर सकें तथा उससे आनन्द प्राप्त कर सकें। प्रत्यक व्यक्ति को प्रतिदिन काम में आने वाली अनेक वस्तुओं को खरीदना पड़ता है । इस खरीदने में बहुत कुछ आनन्द इस बात में छिपा हुआ है कि वस्तुएं किस प्रकार पसन्द की गई हैं । यही नहीं, उन वस्तुओं को घर में किस प्रकार सजाकर रखा जाय कि उनसे आनन्द मिले । यह चेष्टा और प्रयास भी कला है ।

इसके अतिरिक्त कला-शिक्षण का उद्देश्य है स्वत्व-विकास एवम् स्वत्व-प्राप्ति के लिए कार्य-क्षेत्रों को प्रस्तुत करना, नाना प्रकार के पदार्थों से बालकों द्वारा नये-नये परीक्षण करवाना, सुन्दर वस्तुओं द्वारा मनोरंजन करते हुए, खेल-खेल में ही रचनात्मक कृतियों की सृष्टि करना । कला का ध्येय यहां तक ही सीमित एवं परिमित नहीं, यह तो दाता है विचारों तथा विभिन्न मतों की उन्मुक्ति की, सूक्ष्म निरीक्षण के लिए शक्ति की, और मानसिक एवं आत्मिक उन्नति की । इससे भी आवश्यक तथा सदा स्मरण रखने योग्य ध्येय है बालकों में मानवकृत एवं प्रकृतिकृत सौन्दर्य-रचना के प्रति सजगता उत्पन्न कर देना जिससे वह उमड़-घुमड़ कर मडराते हुए काले बादलों में, दूर ऊँचे पहाड़ों की सूर्योदय के समय सुनहरी चोटियों में, सूर्यास्त के समय आकाश में, अद्भुत लालिमा से रंगे बादलों में, हल्की-हल्की फुहारों में झूले के सदृश लटकते हुए इन्द्र-धनुष में सौन्दर्य को देख सकें तथा अपने हृदयों में निस्सीम सुख का अनुभव कर सकें । संक्षेपतः ईश्वरीय और मानवकृत सभी सुन्दर रूपों और रंगों की ग्राहकता इसी के द्वारा उपलब्ध होती है । यह सभी बातें एक उच्च कोटि की नागरिकता के निर्माण में सहायक हैं । इनके द्वारा एक सुन्दर-तम जीवन का आनन्द उपलब्ध हो सकता है । निखिल शिक्षा का उद्देश्य यही है

अध्याय २

कला-शिक्षण के उद्देश्य

विद्यालयों में कला-शिक्षण प्रारम्भ करने के समय हमारे सम्मुख बहुत से उद्देश्य होते हैं, जिनमें से कुछ मुख्य ये हैं :

१. मानसिक विकास;

२. व्यावहारिक शिक्षा;

३. चरित्र-निर्माण;

४. बुद्धि का विकास; और

५. सामाजिक व पारलौकिक उन्नति ।

मानसिक विकास

मानसिक उद्वेगों को, भावनाओं को, तथा मन के ऊपर अंकित विविध प्रभावों को एक कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने में कला एक अत्युत्तम साधन है। कलाकार अपनी कलात्मक कृति के द्वारा कुछ ऐसी नई सी अनुभूति प्राप्त करना चाहता है जो न केवल उसको वरन् दूसरे देखने वालों को भी सुख पहुँचा सके । मानव और मानव के बीच एक प्रकार का मूक सन्देश कला अपने द्वारा पहुँचाती है और यदि हम कहें कि कला ही एक दूसरे देशों के बीच आध्यात्मिक संदेश देने में समर्थ हो सकती है तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी ।

जब नदी बाढ़ के पानी से किनारे के गाँवों इत्यादि का सर्वनाश करने पर तुल जाती है तब उसके पानी का रास्ता बनाकर दूसरी ओर मोड़ ले जाना ही लोगों के जीवन को बचा सकता है। इसी प्रकार जब मानव-मन कुछ ऐसे उद्वेगों से, ऐसी भावनाओं से, जिनको समाज बाहर आने से रोक देता है, अति पूरित हो उठता है तो निश्चय ही उसे एक सहारा चाहिए—ऐसा सहारा जिसके द्वारा वह उन भावों को एक पवित्र तथा परिवर्तित रूप में जनता के सम्मुख रख सके। कला में ही इस कार्य को पूरा करने की शक्ति है, इससे आज कौन इनकार कर सकता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे बालक प्रसन्न-मन तथा प्रसन्न-वदन दिखाई दें तो हमारा कर्तव्य है कि हम उनके भावों को अपने क्रूर तथा बलशाली हाथों से अन्दर ही अन्दर घोट न दें वरन् उनको एक ऐसा मार्ग दिखायें जिससे वे अपने जीवन को पूर्ण बना सकें तथा अपनी समस्त भावनाओं को विकसित कर सकें।

व्यावहारिक शिक्षा तथा चरित्र-निर्माण

कलात्मक कार्य मनुष्य को वस्तुओं व उन वस्तुओं को प्रयोग करने के लिए आवश्यक साधनों के विषय में चतुर बना देता है और इससे उसे हाथों से काम करने की प्रेरणा भी मिलती है। प्राचीन समय में हस्त-कौशल व हस्त-चातुरी पर बहुत ही ध्यान दिया जाता था। यदि हम आज बालकों में यह चातुरी फिर से देखना चाहते हैं तो हमें कला का ही सहारा लेना पड़ेगा। जब बालक आदर तथा आश्चर्य-मिश्रित दृष्टि से किसी कार्य को करने के लिए उसकी पद्धति को देखता है तो इससे उसकी शक्तियों का विकास होता है और उसकी अपनी भावनाओं को प्रदर्शित करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति को प्रेरणा मिलती है और वह एक नवीन उत्साह से भर जाता है। यह उत्साह ही उसको प्रेरित कर सकता है ताकि वह उन भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप दे सके।

बुद्धि का विकास

शिक्षा का उद्देश्य है मानव को उसके वातावरण के अनुकूल बनाना

इस वातावरण का अधिकांश ज्ञान मनुष्य दृष्टि तथा स्पर्श द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। इन इन्द्रियों के साथ कला का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब कला का विकास होता है तो निश्चय ही मनुष्य अपने वातावरण को और भी निकट से देखता है और उसका ज्ञान बढ़ता जाता है, और यही विकास बुद्धि के विकास की प्रथम सोपान-शिला है।

कला का असली तात्पर्य है बच्चे की भावनाओं को जगा देना। उसको प्रकृति में वर्ण-विन्यास, समता व विविधता, इन सबके परस्पर सम्बन्ध के प्रति सजग बना देना और इस प्रकार जागी हुई प्रवृत्तियों को आगे बढ़ावा देना। जब इतना काम हो जाय तब उस नन्हें कलाकार में ऐसी शक्ति भर देनी चाहिए जिससे वह उन नव-विकसित भावनाओं को, विचारों को, एक सुगठित रूप में प्रस्तुत कर सके। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न वाद्यों को एकत्र करके एक मनोहर ध्वनि प्रस्तुत की जाती है उसी प्रकार बच्चे द्वारा दिया गया वह सुगठित रूप एक नवीन आनन्द का देने वाला सिद्ध होगा।

कला अन्य विषयों से भिन्न अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती। यह तो समस्त जीवन की पथ-प्रदर्शिका है और इसलिए जिस-जिस क्षेत्र में मानव-मन उतरता है, कला उसके आगे-आगे चलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कला को स्कूल के समस्त वातावरण में समा जाना चाहिए। इसको वातावरण से अलग किया तो यह पेड़ की टूटी डाल के समान सूखकर मुरझा जायेगी। अतः प्रत्येक विषय के पढ़ाते वक़्त जीवन के इस मुख्य अंग को न भूल जाना चाहिए। प्रकृति का अध्ययन, वनस्पति शास्त्र, भाषा में प्रकृति-वर्णन, भूगोल के सुन्दर वन-प्रदेश तथा मनोहर स्थल सभी कला की प्रेरणा के मुख्य स्रोत हैं। अतः यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि कला मानव-जीवन के अत्यन्त निकट की वस्तु है और इसकी आवश्यकता मानव जीवन के प्रत्येक क्षण पर अनुभव करता है। कला का स्थान स्कूल के सभी विषयों में मुख्य है। यह इतनी बोधगम्य है कि शिशु के लिए कठिन से कठिन ज्ञान इसके द्वारा सरल

हो जाता है। चित्र जिस प्रकार बालक-बालिकाओं की मानसिक वृत्तियों का केन्द्र बन जाता है, उनके मस्तिष्क एवं कोमल मन पर जसी अमिट छाप छोड़ जाता है उस प्रकार किसी अन्य साधन द्वारा सम्भव नहीं।

सामाजिक तथा पारलौकिक उद्देश्य

कला हमें सौन्दर्य के वास्तविक स्वरूप की ओर खींचकर ले जाती है। मनुष्य अपने निवास-स्थल, वस्त्र, खाने-पीने के पात्र इत्यादि में सौन्दर्य को खोजने लगता है और जीवन के अन्त तक इसकी सच्ची लगन उसके हृदय से जाती नहीं। अन्त में उसका जीवन, उसके जीवन के उद्देश्य, उसका निश्चित लक्ष्य एक अपूर्व सौन्दर्य से निखर उठते हैं और वह कला द्वारा जीवन के सत्य को पहचान जाता है। वह प्रकृति के सौन्दर्य में कला के महत्त्व को देखने लगता है और मुग्ध हो जाता है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वह इस वातावरण में फँस जाता है। नहीं, वह इससे ऊपर उठ जाता है। वह इस संसार को एक कलाकार की दृष्टि से देखता है और उस सच्चे कलाकार—परमात्मा—के निकट खिंच जाता है। कला ही मनुष्य की आत्मा को इन्द्रियों द्वारा ऊपर उठाने की कोशिश करती है।

हम अपनी आँखों से देखते तो हैं। पर हम में उस दृश्य को समझने की भी शक्ति होनी चाहिए ताकि हम केवल सौन्दर्य की ओर खिंच सकें और दुर्दर्शनीय वस्तुओं से मुँह मोड़ सकें। शारीरिक चक्षु स्वयं ही सुन्दर वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते हैं। पर इनको आवश्यकता होती है ज्ञान-चक्षुओं की जो उनको मार्ग दिखा सकें। और यह कार्य करने में कुशल है केवल कला।

समाज के विचारों तथा जनता के उच्च आदर्शों को ऊपर उठाने में भी कला ही काम आती है। समाज का उत्थान और पतन बहुत कुछ कला की उन्नति तथा अधोगति पर ही निर्भर होता है। जब जनता के विचार शुद्ध होंगे तो समाज का विकास होगा तथा समाज का चरित्र ऊपर उठ सकेगा। उसका प्रत्येक अंग जब अपने जीवन की पूर्णता

इस वातावरण का अधिकांश ज्ञान मनुष्य दृष्टि तथा स्पर्श द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। इन इन्द्रियों के साथ कला का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब कला का विकास होता है तो निश्चय ही मनुष्य अपने वातावरण को और भी निकट से देखता है और उसका ज्ञान बढ़ता जाता है, और यही विकास बुद्धि के विकास की प्रथम सोपान-शिला है।

कला का असली तात्पर्य है बच्चे की भावनाओं को जगा देना। उसको प्रकृति में वर्ण-विन्यास, समता व विविधता, इन सबके परस्पर सम्बन्ध के प्रति सजग बना देना और इस प्रकार जागी हुई प्रवृत्तियों को आगे बढ़ावा देना। जब इतना काम हो जाय तब उस नन्हें कलाकार में ऐसी शक्ति भर देनी चाहिए जिससे वह उन नव-विकसित भावनाओं को, विचारों को, एक सुगठित रूप में प्रस्तुत कर सके। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न वाद्यों को एकत्र करके एक मनोहर ध्वनि प्रस्तुत की जाती है उसी प्रकार बच्चे द्वारा दिया गया वह सुगठित रूप एक नवीन आनन्द का देने वाला सिद्ध होगा।

कला अन्य विषयों से भिन्न अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती। यह तो समस्त जीवन की पथ-प्रदर्शिका है और इसलिए जिस-जिस क्षेत्र में मानव-मन उतरता है, कला उसके आगे-आगे चलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कला को स्कूल के समस्त वातावरण में समा जाना चाहिए। इसको वातावरण से अलग किया तो यह पेड़ की टूटी डाल के समान सूखकर मुरझा जायेगी। अतः प्रत्येक विषय के पढ़ाते वक़्त जीवन के इस मुख्य अंग को न भूल जाना चाहिए। प्रकृति का अध्ययन, वनस्पति शास्त्र, भाषा में प्रकृति-वर्णन, भूगोल के सुन्दर वन-प्रदेश तथा मनोहर स्थल सभी कला की प्रेरणा के मुख्य स्रोत हैं। अतः यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि कला मानव-जीवन के अत्यन्त निकट की वस्तु है और इसकी आवश्यकता मानव जीवन के प्रत्येक क्षण पर अनुभव करता है। कला का स्थान स्कूल के सभी विषयों में मुख्य है। यह इतनी बोधगम्य है कि शिशु के लिए कठिन से कठिन ज्ञान इसके द्वारा सरल

हो जाता है। चित्र जिस प्रकार बालक-बालिकाओं की मानसिक वृत्तियों का केन्द्र बन जाता है, उनके मस्तिष्क एवं कोमल मन पर जसी अमिट छाप छोड़ जाता है उस प्रकार किसी अन्य साधन द्वारा सम्भव नहीं।

सामाजिक तथा पारलौकिक उद्देश्य

कला हमें सौन्दर्य के वास्तविक स्वरूप की ओर खींचकर ले जाती है। मनुष्य अपने निवास-स्थल, वस्त्र, खाने-पीने के पात्र इत्यादि में सौन्दर्य को खोजने लगता है और जीवन के अन्त तक इसकी सच्ची लगन उसके हृदय से जाती नहीं। अन्त में उसका जीवन, उसके जीवन के उद्देश्य, उसका निश्चित लक्ष्य एक अपूर्व सौन्दर्य से निखर उठते हैं और वह कला द्वारा जीवन के सत्य को पहचान जाता है। वह प्रकृति के सौन्दर्य में कला के महत्त्व को देखने लगता है और मुग्ध हो जाता है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वह इस वातावरण में फँस जाता है। नहीं, वह इससे ऊपर उठ जाता है। वह इस संसार को एक कलाकार की दृष्टि से देखता है और उस सच्चे कलाकार—परमात्मा—के निकट खिंच जाता है। कला ही मनुष्य की आत्मा को इन्द्रियों द्वारा ऊपर उठाने की कोशिश करती है।

हम अपनी आँखों से देखते तो हैं। पर हम में उस दृश्य को समझने की भी शक्ति होनी चाहिए ताकि हम केवल सौन्दर्य की ओर खिंच सकें और दुर्दर्शनीय वस्तुओं से मुँह मोड़ सकें। शारीरिक चक्षु स्वयं ही सुन्दर वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते हैं। पर इनको आवश्यकता होती है ज्ञान-चक्षुओं की जो उनको मार्ग दिखा सकें। और यह कार्य करने में कुशल है केवल कला।

समाज के विचारों तथा जनता के उच्च आदर्शों को ऊपर उठाने में भी कला ही काम आती है। समाज का उत्थान और पतन बहुत कुछ कला की उन्नति तथा अधोगति पर ही निर्भर होता है। जब जनता के विचार शुद्ध होंगे तो समाज का विकास होगा तथा समाज का चरित्र ऊपर उठ सकेगा। उसका प्रत्येक अंग जब अपने जीवन की पूर्णता

को पहचान जायगा, अपने अवकाश का ठीक तरह प्रयोग कर सकेगा, तो निश्चय ही इसका प्रभाव समाज पर पड़ेगा। प्रत्येक मनुष्य समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को समझ सकेगा, अपने विचारों को शुद्ध कर सकेगा, और अपनी आत्मा के विकास में समाज को बाधा न समझकर एक शक्तिशाली संस्था समझेगा जो उसको ऊँचा उठाने में सहायक हो सकती है। इसी प्रकार मानव और मानव-समाज के बीच वास्तविक संतुलन स्थापित हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

कला क्या है?

कोई भी चित्र, प्रतिमा, किसी प्रकार का वर्ण-विन्यास, पुष्प-विन्यास, सुन्दर-सा कोई पात्र अथवा मानव-निर्मित कृति जो हमारा ध्यान इस भाँति आकर्षित करे कि हम उसे देखें और उस निहित सौन्दर्य को पहचान लें वही कला है। जहाँ मानव है वहीं कला है। मानव-जीवन की अपूर्णताओं की पूरक कला है। मानव-जीवन की रुक्षता को सरस बनाने तथा उसके विकास के लिए पथ-प्रदर्शिका है कला। जीवन की प्रत्येक अवस्था में, सुख में या दुख में, कला ही जीवन की सच्ची सहचरी है। कला का गौरव सुन्दर वस्तुओं के सौन्दर्य-निरीक्षण में निहित है। कला का गौरव पहचानना मनुष्य को तभी आता है जब वह कला के प्रति सजग हो।

प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित सौन्दर्य

प्राकृतिक सौन्दर्य और मानव-निर्मित सौन्दर्य में भी कुछ भेद है। श्याम घन में विद्युत-छटा, प्रभात-काल में उषा की लालिमा, अस्ताचल के मस्तक पर सूर्य की रश्मियों का कल्लोल, मध्याह्न-रवि का प्रखर तेज, शशि का घन-पटल के बीच में अकस्मात् दर्शन, मुक्त आकाश में पक्षियों का

स्वच्छन्द विहार, तारांकित गगन—ये प्राकृतिक सौन्दर्य के कुछ नमूने हैं। लम्बी पर्वत-शृंखलाओं में, छोटे-छोटे रेतीले कणों में, फूलों और फसलों के दृश्यों में, उनके रंगों में मानव प्रकृति-सौन्दर्य की झलक देखता रहता है। इस सौन्दर्य को पेंसिल से या रंग से काग़ज़ पर उतार लेना तो प्रकृति को पत्रबद्ध ही करना है। यह चित्रण या रेखांकन मनुष्य को प्रकृति-सौन्दर्य के ज्ञान तथा गौरव के प्रति सजग तो कर सकता है पर यह कला नहीं है।

फिर कला है क्या ?

सच्ची कला की व्याख्या

सच्चा कलाकार कुछ अपने स्वभाव से ही अपनी कृति को किसी नियत नमूने के अनुसार बनाना नहीं जानता। प्रकृति अपने नियमों से बद्ध है। मकड़ी अपना जाला बनाते समय एक ही आदर्श सम्मुख रखती है और उसे पूरा कर लेती है। पेड़-पौधे भी इसी प्रकार एक नियम का पालन करते हैं। कलाकार प्रकृति के नियमों से बँधा हुआ नहीं। जब वह कला में निमग्न होता है तो नए सौन्दर्य की रचना करता है, नई वस्तु बनाता है। वह केवल नकल करना नहीं जानता, वह स्वयं को व्यक्त करना जानता है।

कोई प्रतिमा, पात्र या सुन्दर-सा चित्र यदि प्रकृति का अनुकरण मात्र है तो उसे कला नहीं कहा जा सकता। कला वह है जो मानव की कल्पना-निर्मित अद्‌भुत रचना में सबको चकित कर दे। प्रकृति से मानव को सदैव प्रेरणा मिलती रही है और मिलती रहेगी, परन्तु चित्रकार अपनी कला का स्वयं ही विधाता होता है। एक यही तो शक्ति है जो मानव को समस्त जन्तुओं से ऊँचा उठाये रखती है।

कला का जन्म

कला का जन्म मानव की आविष्कार करन की प्रवृत्ति का ही परिणाम है। पुरातन काल में मनुष्य को संसार अत्यन्त ही जटिल तथा अनोखा प्रतीत हुआ होगा। पर वह था अपने समय का कलाकार।

प्रकृति को भली भाँति समझ बिना भी वह अपन निवास-स्थान को चाहे वह गुफा ही क्यों न हो, सजाता रहा, अपने शरीर को सुन्दरतम बनाने के लिए विविध रंगों का प्रयोग करता रहा और धीरे-धीरे चित्रित वस्त्रों के उपयोग की ओर अग्रसर हुआ । अपने घर को विविध अवसरों पर तरह-तरह से सजाकर वह जीवन के प्रत्येक क्षण को चित्रित, रंजित और आनन्दित बनान के लिए प्रयत्न करता रहा ।

कला में क्रमिक उन्नति

प्राचीन काल में मानव को ज़मीन खोदने के लिए अस्त्रों की, शिकार के लिए शस्त्रों की, खाने-पीने के लिए पात्रों की आवश्यकता अनुभव हुई । प्रकृति से उसने सहायता ली और पेड़ की टूटी डाल, मार्ग में पड़े पत्थर उसके अस्त्र-शस्त्र बने । काँटे व मछलियों की हड्डी से सुई और सूत्र का काम लेता रहा । नारियल के खोल को पीने का पात्र बनाया और पत्तों को जोड़कर उनसे खाने के पात्रों का काम लिया । धीरे-धीरे पत्तों से बनाए गये पात्रों के स्थान पर मिट्टी के पात्र बनाये । टूटी शाख को छीला, जिससे वह अच्छी तरह पकड़ी जा सके । इसी प्रकार धीरे-धीरे मनुष्य ने अपने साधनों में परिवर्तन किये और उसने एक नया अनुभव किया । जैसे-जैसे पदार्थ उसकी आवश्यकता के अनुकूल होते जाते थे वैसे-वैसे सुन्दरता में निखरते आते थे और मनोहर आकृति धारण करते जाते थे । अब उसने मिट्टी, लकड़ी, पत्थर को नर व नारी की आकृति जैसा बनाना शुरू किया, इसलिए नहीं कि इनकी उसको आवश्यकता थी, परन्तु इसलिए कि इससे उसे खुशी होती थी । इस तरह उसने पदार्थों पर विजय पाई और सौन्दर्य की झलक को पहचानना प्रारम्भ किया ।

नव-निर्माण की स्वाभाविक प्रवृत्ति

यह पहचान हमें अपने पूर्वजों से मिली है और स्वभाव से ही हम कुछ-न-कुछ बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं । बचपन में रेत के किले, सुरंगें, घर, मिट्टी की मिठाइयाँ, रुपये-पैसे बनाना आज भी किसको याद न होगा ? आज शिक्षकगण भी जान गये हैं कि इस नव-निर्माण की

प्रवृत्ति को सहारे की आवश्यकता है और इसीलिए विद्यालयों में आज कला-शिक्षण को इतना महत्त्व दिया जाता है। प्रथम श्रेणी से लेकर सर्वोच्च श्रेणी-पर्यन्त बच्चे को अपने मनपसन्द की कृति बनाने की सुविधा होनी चाहिए। जैसे-जैसे वे अपने भावों को रेखाओं या रंगों द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं वैसे-वैसे वे कलाकार की मुश्किलों को समझते जाते हैं और अपने कार्य में सच्चे उत्साह और लगन से लग जाते हैं।

अपने जीवन में चाहे जिस प्रकार का व्यवसाय मानव को करना पड़े, जीवन की पूर्णता व सुन्दरता का आनन्द वही उठा सकता है जो कला को पहचान सके। कला का ज्ञान और उसकी पहचान मानव-जीवन को ही कला बना देती है।

कला की पहचान प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक

अतः ध्यान रखने योग्य बात यह है कि चाहे हमें जीवन में चित्र बनाने की, फ़र्नीचर बनाने की, अस्त्र-शस्त्र बनाने की अथवा वस्त्र बुनने की आवश्यकता न भी पड़े, तो भी प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए वस्तुओं का चुनाव करना ही पड़ता है। इसके लिए मनुष्य में कला को परखने अथवा समझने की शक्ति होनी चाहिए, पदार्थों में सौन्दर्य को देखने के योग्य चक्षु होने चाहिएँ और इसके साथ-साथ होना चाहिए एक तुलनात्मक ज्ञान, जिससे कि मनुष्य अपना चुनाव भली भाँति कर सके।

अतः शिक्षक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह बालकों में कला के सिद्धान्तों को समझने की शक्ति पैदा करे जिससे वे कलात्मक वस्तुओं को पहचानना सीख जायें और उनकी समुचित प्रशंसा कर सकें। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे हर प्रकार की वस्तु की प्रशंसा करने लगें। उनमें इतना ज्ञान होना चाहिए कि वे इस विषय पर भली प्रकार आलोचना कर सकें, वस्तुओं की समता व विषमता को देख सकें और फिर उनको सुन्दरतापूर्वक क्रमबद्ध कर सकें। यह ज्ञान प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक है और जीवन को सम्पूर्ण बनाने की प्रथम सोपान-शिला है।

अध्याय ४

कला के सिद्धान्त

कला के मुख्य सिद्धान्त तीन हैं : सन्तुलन, लय और प्रभुत्व ।

सन्तुलन—कला का प्रथम सिद्धान्त

जीवन के प्रत्येक क्षण में सन्तुलन की आवश्यकता होती है। हमारे चलने-फिरने में, खेलने में, दौड़ने में, कोई भी कार्य करने में सन्तुलन की ही महत्ता का पग-पग पर बोध होता रहता है। सन्तुलन जीवन का और कला का प्रथम नियम है। चित्र को टाँगते समय सन्तुलन की आवश्यकता हमें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। चित्र १ में टेढ़ी तस्वीर की स्थिति किसकी आँखों को एकदम चुभती-सी प्रतीत नहीं होती ? कारण स्पष्ट ही है कि यहाँ सन्तुलन का अभाव होने से यह हमें आकृष्ट तो करती है पर आनन्द नहीं देती। चित्र २ में दर्शित तस्वीर की स्थिति सन्तुलन होने से स्थिरता और निश्चिन्तता का आभास देती है और इस तरह मन को सुख व आनन्द प्रदान करती है।

चित्र ३ और ४ द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति की वस्तुओं में तथा मानव-निर्मित वस्तुओं में भी किस प्रकार नियमित व अनियमित सन्तुलन पाया जाता है। यदि बाईं ओर अंकित गृह के बीच से खड़ी रेखा डाली जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि रेखा के एक ओर का विन्यास दूसरी ओर के विन्यास के समान है, अतः यह गृह-चित्र नियमित सन्तुलन
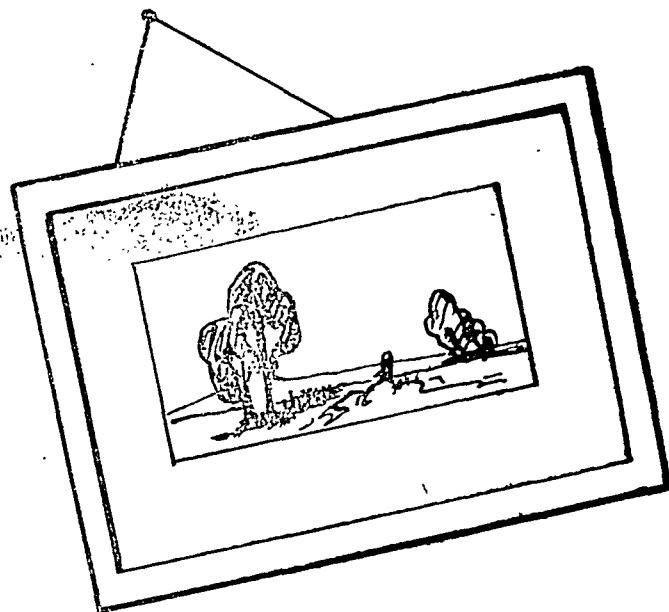
चित्र १. असन्तुलित चित्र.
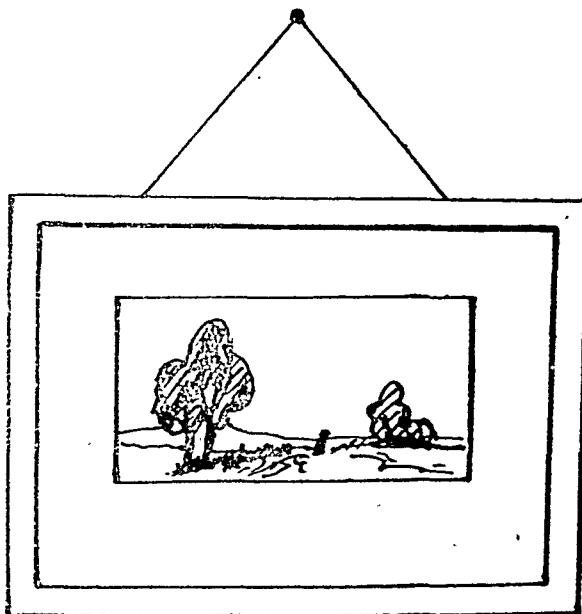
चित्र २. सन्तुलित चित्र.
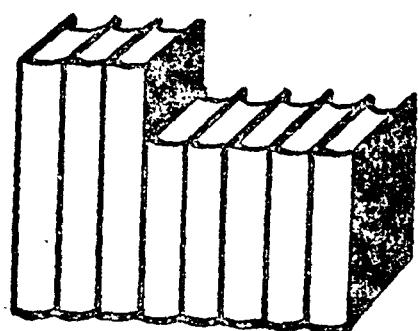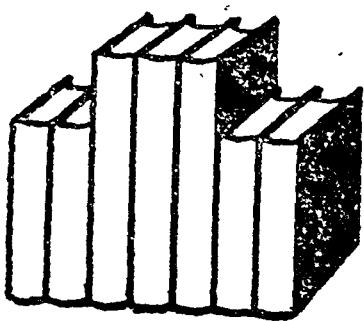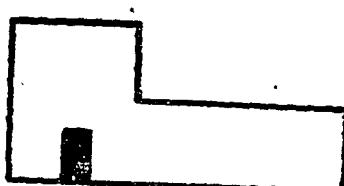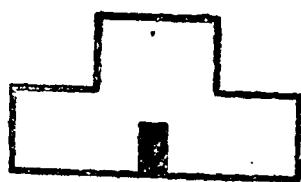
चित्र ३. प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित वस्तुओं में नियमित सन्तुलन.

चित्र ४. प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित वस्तुओं में अनियमित सन्तुलन.

मैं प्रतिदिन

एक अच्छा

काम करूँगा

चित्र ५. लिखाई में नियमित सन्तुलन.

मैं प्रतिदिन

एक अच्छा

कार्य करूँगा

चित्र ६. लिखाई में अनियमित सन्तुलन.

का उदाहरण है। दायीं ओर का गृह-चित्र अनियमित सन्तुलन का द्योतक है।

चित्र ७. गिलहरी के आकार में सन्तुलन.

पशुओं व पक्षियों की आकृतियों द्वारा भी सन्तुलन का अर्थ स्पष्ट हो है । चित्र ७ में दी गई गिलहरी तथा चित्र ८ में दिये

मोर के चित्र को देखने से पूर्ण सन्तुलन का आभास मिलता है। अब ज़रा मोर या गिलहरी की पूंछ को हाथ से या काग़ज़ से ढककर देखिए
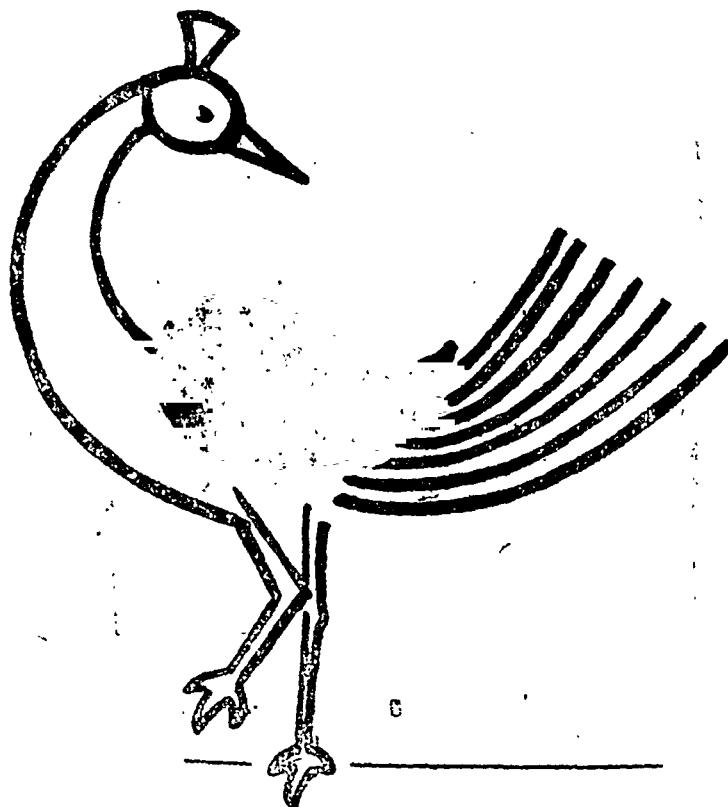
चित्र ८. मोर के आकार में सन्तुलन.

कि चित्र किस प्रकार सन्तुलन खोकर सारा सौन्दर्य गँवा बैठता है।

सन्तुलन के अभाव का एक और उदाहरण चित्र ९ में मिलता

है। यहाँ भी दृष्टि एक स्थान पर टिकती नहीं और चित्र में कुछ खोया खोया-सा प्रतीत होता है। कारण यही है कि चित्र में एक ओर पेड़ों का बड़ा झुण्ड है और दूसरी ओर कुछ भी नहीं है। परन्तु यदि हम इधर की
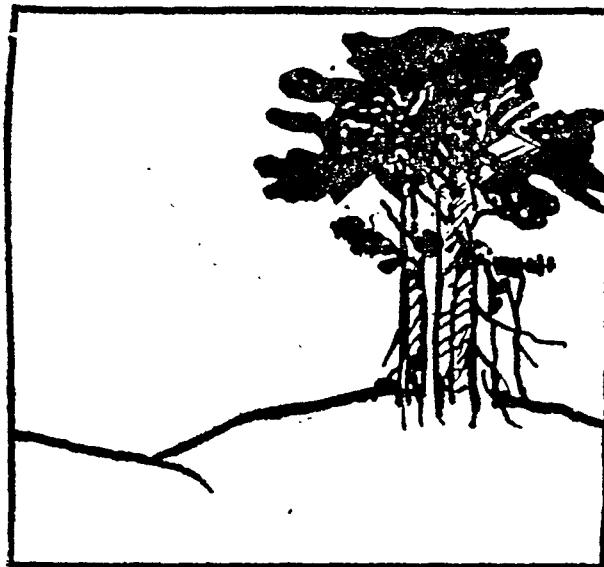
चित्र ६. असन्तुलित थलचित्र.

ओर एक छोटी-सी आकृति बना दें तो चित्र में पूरा सन्तुलन हो जाता है जैसा कि चित्र १० में दिखाया गया है।

चित्र ११ तथा १२ का मिलान करने से प्रतिदिन के पत्र-व्यवहार, निमन्त्रण-पत्र, बधाई पत्र, पृष्ठ और इश्तिहार इत्यादि में

भी सन्तुलन की भारी आवश्यकता का अनुभव होता है। चित्र ११ में पूर्ण पृष्ठ ही असन्तुलित है। छपे हुए अक्षर दाईं ओर नीचे को

चित्र १०. सन्तुलित थलचित्र.

गिरते से दिखाई देते हैं। चित्र १२ द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि नीचे की ओर अधिक स्थान छोड़ने से सन्तुलन ठीक हो जाता है।

सजावट की समस्या प्रत्येक को जीवन में अनेक बार सुलझानी पड़ती है । जैसे कि कमरे में चारपाई का लगाना, मेज़ पर गुलदस्ता सजाना, और कागज़ पर लिखाई करना । यह चीज़ें अच्छे ढंग से भी लगाई जा सकती हैं तथा बुरे ढंग से भी ।

बालकों को यह सिखाना चाहिए कि चित्र के चारों ओर स्थान छोड़ते समय नीचे का स्थान बड़ा छोड़ना चाहिए । वरना वह चित्र ऐसा लगेगा जैसा कि वह नीचे की ओर खिसकता जा रहा है ।

चित्र ११. असन्तुलित लिखाई

सजावट की समस्या प्रत्येक को जीवन में अनेक बार सुलझानी पड़ती है। जैसे कि कमरे में चारपाई का लगाना, मेज़ पर गुलदस्ता सजाना, और काग़ज़ पर लिखाई करना। यह चीज़ें अच्छे ढंग से भी लगाई जा सकती हैं तथा बुरे ढंग से भी।

बालकों को यह सिखाना चाहिए कि चित्र के चारों ओर स्थान छोड़ते समय नीचे का स्थान बड़ा छोड़ना चाहिए। वरना वह चित्र ऐसा लगेगा जैसे कि वह नीचे की ओर खिसकता जा रहा है।

चित्र १२. सन्तुलित लिखाई.

चित्र १३ में फलों का गुलदस्ता एक ओर सन्तुलन के अभाव का
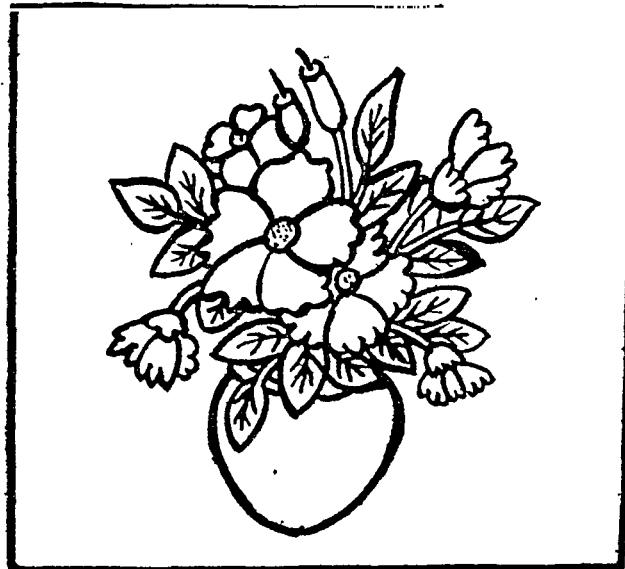
चित्र १३. असन्तुलित गुलदस्ता.

नमूना है। यहाँ प्रतिपल ऐसा प्रतीत होता है कि गुलदस्ता अभी गिरा।

चित्र १४ में दिखाया गया है कि केवल थोड़ी सी रेखाएँ खींचने से
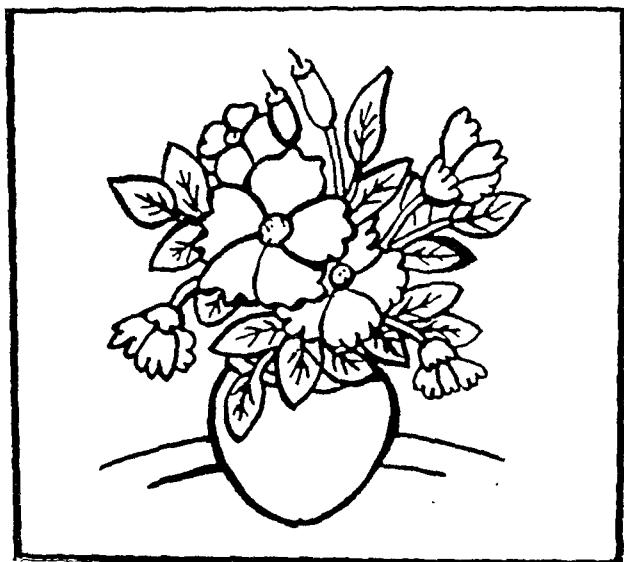
चित्र १४. सन्तुलित ुलदस्ता.

चित्र में स्थिरता आ गई है और चित्र पूर्ण रूप से सन्तुलित्त दिखाई देता है।

लय—कला का द्वितीय सिद्धान्त

आपने यह देखा ही होगा कि जब किसी चिन्ह को, रेखा को या किसी बिन्दु को बार-बार एक ही लाइन में बना दिया जाय तो उस समस्त विन्यास में एक प्रकार की गति-सी पैदा हो जाती है और फिर उस एक बिन्दु या रेखा का कोई अपना अलग अस्तित्व नहीं रहता और नेत्र समस्त विन्यास पर केन्द्रित हो जाते हैं। इसी गति को हम लय के नाम से पुकारते हैं। प्रकृति में भी हमें लय के सुन्दर नमूने दिखाई देते हैं। ऊँचे पर्वतों के मिले हुए शिखर, लम्बी शृंखलाएँ, बादलों के कटे-कटे से किनारे, वृक्षों के फूलों के समूह, पत्तों का चित्ताकर्षक रंग और हवा में हिलना-डुलना एक संगीतमय लय की अनुभूति देता है। इसी प्रकार नर्तक की भावपूर्ण अविराम भंगिमाएँ तथा संगीत-लय पर आश्रित मुद्राएँ व पादन्यास किसके चित्त को आबद्ध नहीं कर लेता। पर यही मुद्राएँ विना किसी नियम या लय के की जायँ, जैसा कि प्रायः नृत्य सीखने वाले की होती हैं, तो चित्र में कितनी अशान्ति-सी उत्पन्न कर देती हैं। मानव-जीवन ही लय पर आश्रित है। लय और गति मानव-जीवन को कल-कल-नाद से मुखरित झरने के समान चित्ताकर्षक वना देती है।

और यह लय उत्पन्न होती है किसी भी विन्यास की पुनरावृत्ति करने से। दूसरे शब्दों में पुनरावृत्ति ही लय का आधार है और कला के समस्त जीवन में अत्यधिक रूप से समाई हुई है। उदाहरण के लिए चित्र

चित्र १५. काला चिन्ह.

चित्र १६. काले चिन्हों की नियमित पंक्ति.

१५ में काले चिन्ह को देखिए। इस भद्दे काले चिन्ह में कुछ भी सौन्दर्य नहीं है। परन्तु वार-वार नियमित रूप से अंकित किया गया वही चिन्ह (चित्र १६) कैसी मनोहर लय को जन्म दे रहा है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण लीजिए—

एक काली धारी का अपना कोई सौन्दर्य नहीं है। पर वही काली धारी यदि वार-वार बनाई जाय तो उसमें एक लयपूर्ण सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है, (चित्र १७)।
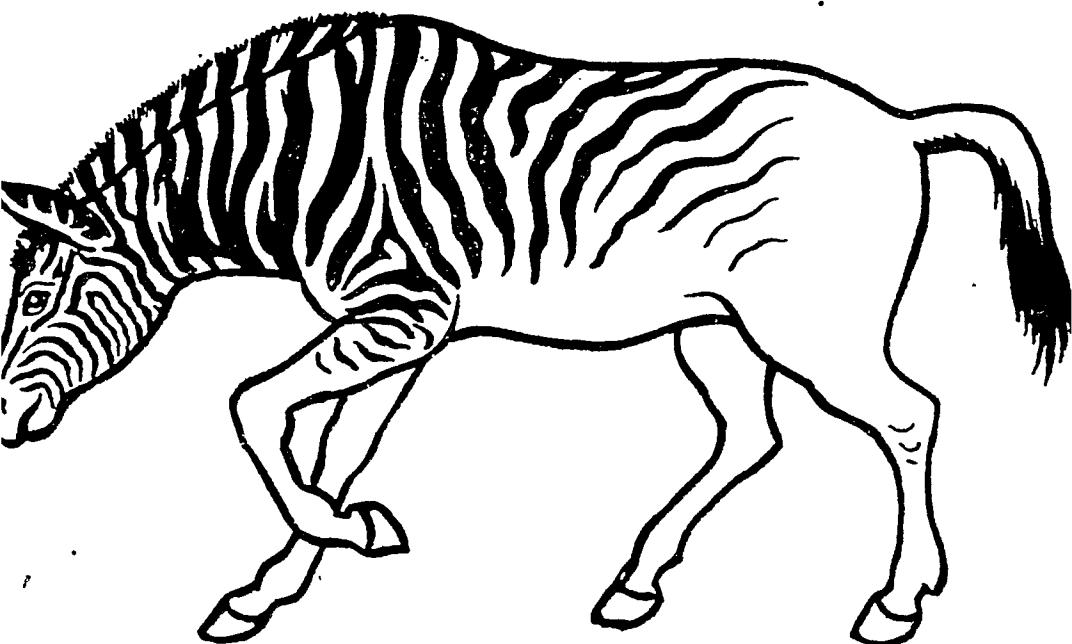
चित्र १७. ज़ेबरा.

चित्र ८१ में गाने के दो भिन्न-भिन्न ताल टेढ़ी-मेढ़ी रेखा द्वारा बताये गये हैं। पतली रेखा धीमी लम्बी ताल का संकेत करती है और मोटी रेखा छोटी तेज़ ताल की द्योतक है। यदि इस टेढी-मेढ़ी रेखा को बार-बार नियमित रूप से बनाया जाय तो वह एक लयपूर्ण विन्यास (चित्र १९) बन जाता है।

इसी प्रकार के लयपूर्ण विन्यास चित्र २० में दिखाये गये हैं। पहिला विन्यास पहाड़ों का द्योतक है और दूसरा विन्यास लहरों का।

चित्र १८. डाडा-डा-डाडा-डा.

चित्र १९. लयपूर्ण-विन्यास.
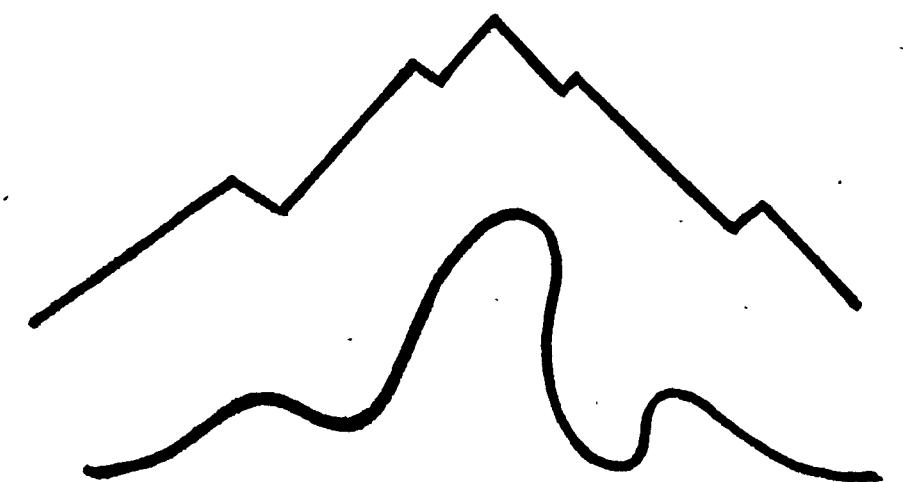
चित्र २०., पहाड़ और समुद्र की लहरें.

इनको देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे स्थान-स्थान पर लय उठती हो और गिरती हो।

चित्र २१ लयपूर्ण पुनरावृत्ति का एक अनुपम उदाहरण है। इसमें देखते समय हमारी दृष्टि धीरे-धीरे क्रमपूर्वक घूमती हुई एक मुख्य स्थान पर पहुँच जाती है जैसा कि चित्र २२ में तीरों द्वारा दिखाया गया है। इसे देखते समय सर्वप्रथम हमारी दृष्टि दाहिनी ओर अंकित की गई मुखाकृति पर पड़ती है और फिर क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठी मुखाकृति पर। इस प्रकार यात्रा करती हुई हमारी दृष्टि अन्त में बैठी हुई मुख्य नायिका पर टिक जाती है। इसीलिए यह चित्र नेत्रों को एक अनुपम आनन्द तथा सुख प्रदान करता है।

चित्र २३ का विज्ञापन प्रतिदिन के व्यवहार में लय की आवश्यकता तथा महत्ता का ध्यान दिलाता है। विज्ञापन बनाना भी एक कला है और इसीलिए उसमें लय को भूल जाना कला के एक महत्त्वपूर्ण अंग को ही भूल जाना है। इस विज्ञापन में यही बात ध्यान देने योग्य है कि नारी मुखाकृति को जोड़ती हुई सीधे कम्पनी के नाम पर दृष्टि को केन्द्रित कर देती है और इस प्रकार विज्ञापन को आकर्षक बना रही है।

अब चित्र २४ को देखिए—कीर्तन करते हुए भक्तों का यह चित्र सुन्दर लययुक्त गति का एक अच्छा उदाहरण है। आप इसमें देखेंगे कि एक समय में एक ही आकृति आपकी दृष्टि के आगे आती है। ज्योंही एक आकृति आपकी आँखों के सामने आती है, दूसरी तिरोहित हो जाती है। एक आकृति से दूसरी आकृति की ओर यह गति एक मधुर लय बन जाती है। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सचमुच में भक्त नाच रहे हैं। चित्रकार की इस सफल कृति में आप जैसे सजीव व्यक्तियों को कीर्तन करते पाते हैं—यहाँ तक कि उनके स्वर-ताल और मृदंग की ध्वनि भी जैसे सुनाई पड़ रही है।
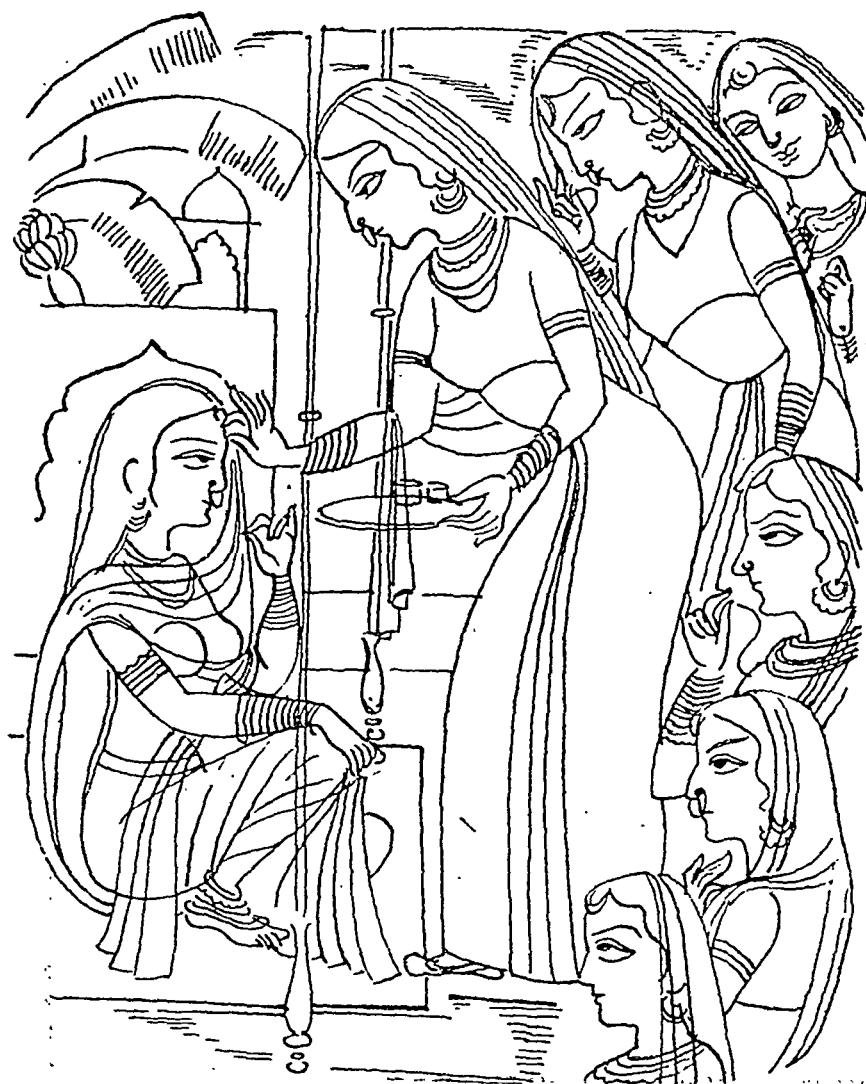
चित्र २१. कुंकुम
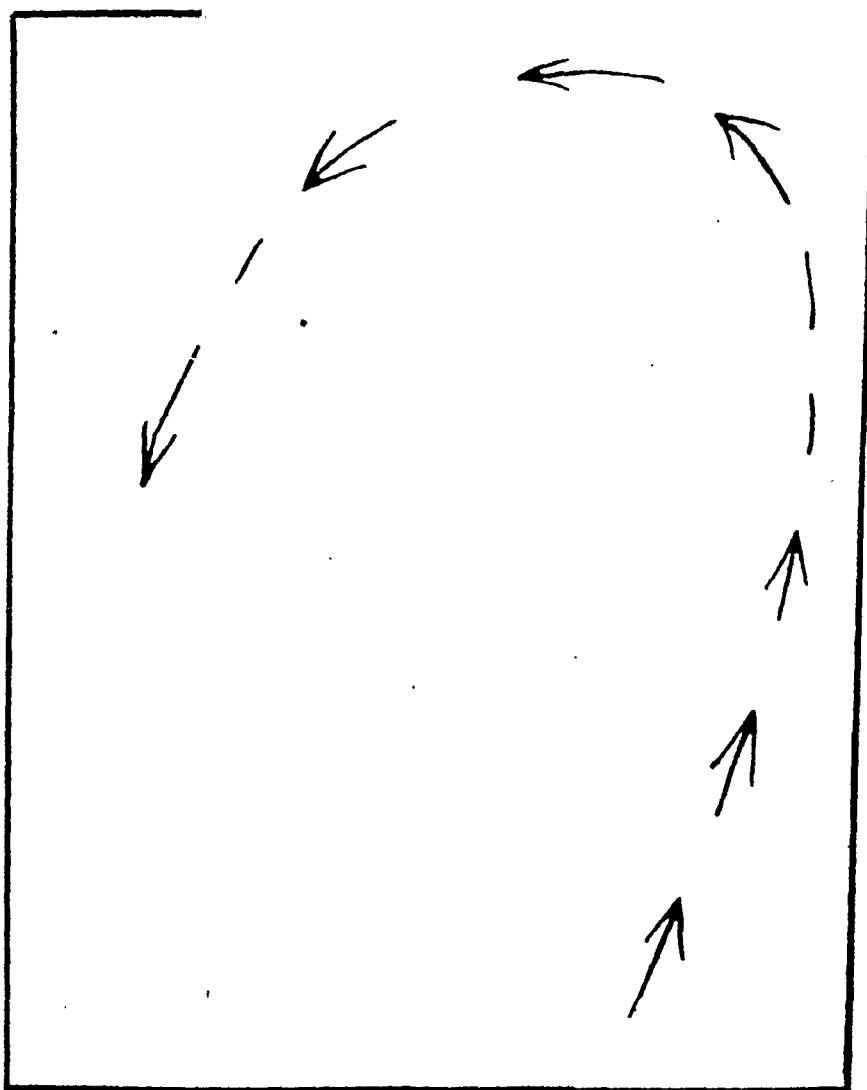
चित्र २२. कुंकुम चित्र की लय-गति.

यार्डले

सुगन्ध, आकर्षण और

सौन्दर्य के लिए

चित्र २३. लययुक्त विज्ञापन.
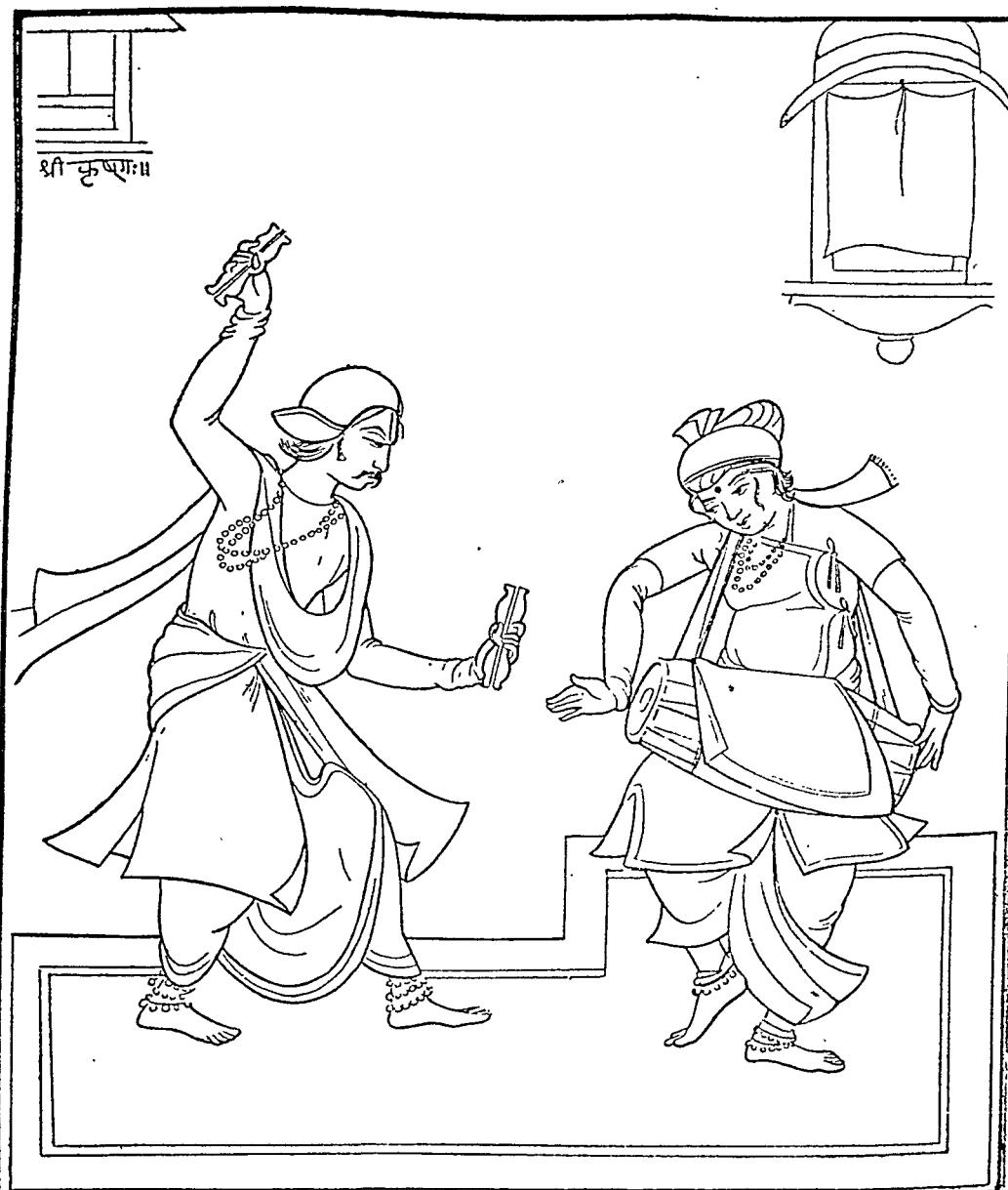
चित्र २४. कीर्तन. चित्रकार—श्री ज० गु० अहीवासी.
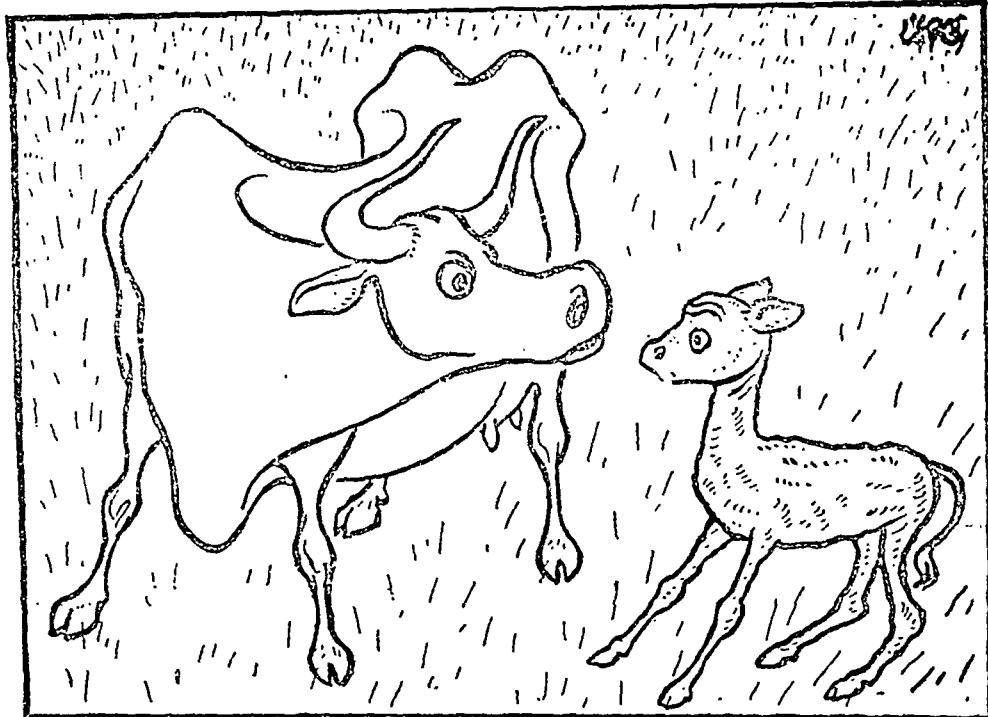
चित्र २५. गाय और बछड़ा.

चित्र २५ की ओर देखिये, गाय तथा बछड़े का चित्र भी एक लय उत्पन्न करता है । दृष्टि पहले गऊ की ओर जाती है बाद में बछड़े की ओर धीरे से खिसक आती है, और फिर गाय की ओर दौड़ती है और नेत्रों में एक चपलता-सी उत्पन्न हो जाती है।
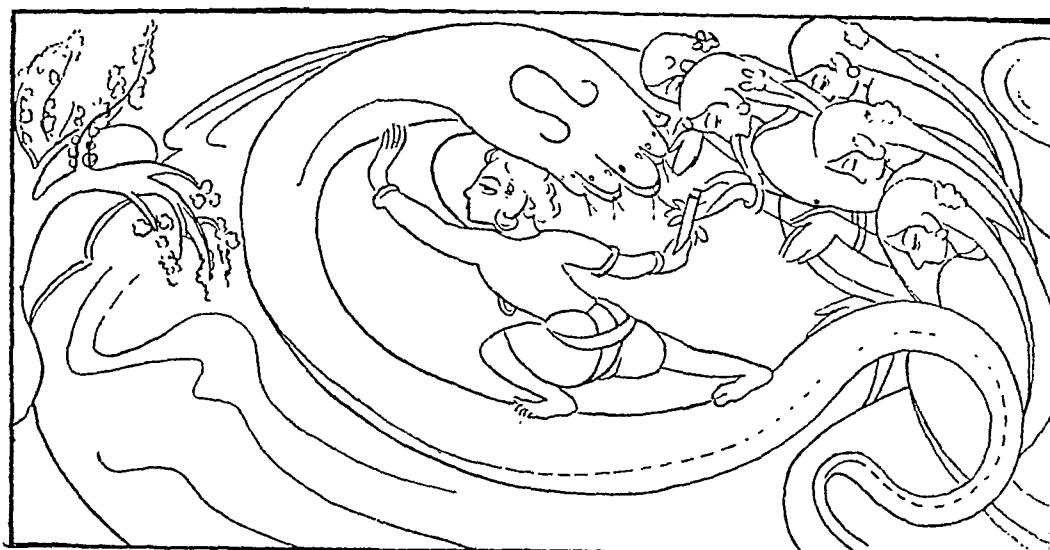
चित्र २६. काली-मर्दन.

(ऑल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्रैफ्ट्स सोसाइटी के सौजन्य से प्राप्त)

अब तक हमने जितने चित्र देखे हैं उनमें से चित्र २६ का अपना अलग ही स्थान है। विच्छिन्न लय का प्रभुत्व इसको और भी अनोखा बना रहा है। इस चित्र में चित्रकार ने घुमावदार रेखाओं द्वारा लयपूर्ण गति बताई है। यह गति इतनी तीव्र है कि हमारी आँखों की पुतलियाँ भी धीरे-धीरे घूमती रहती हैं। अब हम सूक्ष्म रूप से इन रेखाओं का अध्ययन करेंगे। इस चित्र में बड़ी से बड़ी एक घुमावदार रेखा है जो तेज गति की द्योतक है—वह रेखा है सर्प की। चित्र के दाहिनी ओर इसी प्रकार छोटी-छोटी घुमावदार रेखाएँ एक ही दिशा में बार-बार लहरा रही हैं—ये छोटी रेखाएँ नाग-वधुओं की वेणियाँ हैं—ये भी तीव्र गति की द्योतक हैं। जिस प्रकार स्थिर पानी में एक छोटी-सी कंकरी लहरें उत्पन्न कर देती है उसी प्रकार चित्रकार ने इस स्थिर चित्र में अपनी कला से लहरें पैदा करदी हैं।

प्रभुत्वकला का तृतीय सिद्धान्त—

जब हम किसी विन्यास में किसी एक वस्तु का दूसरी अन्य वस्तुओं पर अधिकार-सा देखते हैं तब हम कह सकते हैं कि इस वस्तु का विन्यास पर प्रभुत्व है यानी अन्य कुछ अनावश्यक वस्तुओं को वह अपने अधिकार से आवृत्त किये है, यही प्रभुत्व कहलाता है । जीवन की प्रत्येक अवस्था में प्रभुत्व को आधार-शिला की तरह देख पाते हैं। जब मानव मस्तिष्क को समान अधिकार के दो विपरीत विचार घेर लेते हैं तो समस्या तभी सुलझती है जब एक विचार का दूसरे विचार पर अधिकार हो जाय । मनुष्य का जीवन एक जंजाल मात्र हो जाता है और वह कुछ निश्चय नहीं कर पाता । कभी-कभी तो यही प्रभुत्व का अभाव मनुष्य को पागल बना डालता है और उसका जीवन नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार चित्र में भी जब तक किसी एक वस्तु का दूसरी पर अधिकार न होगा, वह सब एक मिश्रित समूह के समान दिखाई देगा और पूर्ण चित्र को नष्ट कर देगा।

'प्रभुत्व' का दूसरा उद्देश्य होता है नीरसता को दूर करना तथा ध्यान को आकर्षित करके चित्र में एक प्रकार की विचित्रता-सी पैदा करना। एक शून्य दीवार हमारी आँखों को आकृष्ट नहीं कर सकती (चित्र २७), क्योंकि उस पर कोई ऐसी वस्तु नहीं जो ध्यान को खींच सके। दूसरे शब्दों में दीवार पर किसी वस्तु का प्रभुत्व नहीं है, अधिकार नहीं है। यह निर्जीव-सी प्रतीत होती है। परन्तु इसी दीवार पर एक सुन्दर चित्र लगा देने से परिणाम कुछ और ही हो जाता है (चित्र २८), ध्यान एक दम खिच जाता है, मन आल्हादित हो उठता है और निश्चय ही शून्य दीवार अधिक विचित्र तथा सजीव प्रतीत होने लगती है।

इसी प्रकार घर की एक मेज़ को ही ले लीजिए। पात्र या फूलदान आदि से विहीन मेज़ एक प्रकार का सूनापन लिये हुए होती है और वही अपने सूनेपन का प्रभाव अपने वातावरण पर भी डाल देती है, पर इसके

चित्र २७. शून्य दीवार.

चित्र २८. चित्र सहित दीवार.

चित्र २६. पात्र.
(चीनी गणतंत्र के सौजन्य से प्राप्त)

चित्र ३०. रस आदान. (नाखून द्वारा बनाया गया चित्र)
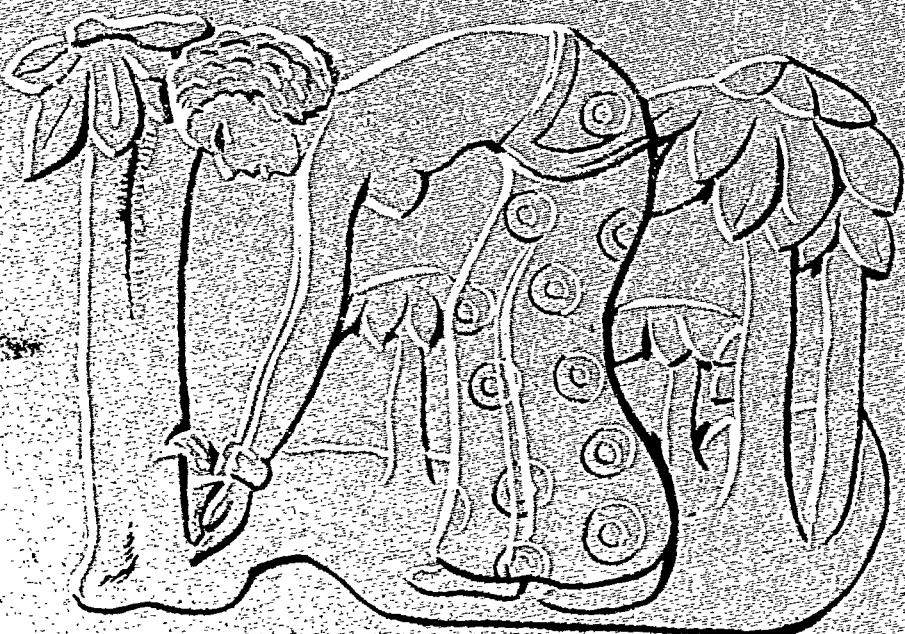
तौर से समझने के लिए अब हम चित्र ३६ को देखेंगे । इस चित्र में सफेद फूलों के पीछे विपरीत रंग की पत्तियाँ सजाई गई हैं जिससे फूलों को प्रधानता मिलती है ।

वश्व-शान्ति

अगर तुम्हारा हृदय पवित्र है, तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा; अगर तुम्हारा आचरण पवित्र है, तो तुम्हारे घर में शान्ति रहेगी; यदि घर में शान्ति है, तो राष्ट्र में सुव्यवस्था होगी; और अगर राष्ट्र में सुव्यवस्था है, तो समस्त विश्व में शान्ति और सुख होगा ।

चित्र ३२. चीनी कहावत.

इसी प्रकार चित्र ३७ भी 'प्रभुत्व' का एक सुन्दर उदाहरण है । यह चित्र चीन देश की हाथ की छपी हुई चद्दर का है। पहले हमारी दृष्टि इस चद्दर के बीच वाले भाग पर जाती है और बाद में चद्दर के चारों ओर की किनारी पर । और फिर चद्दर के बीच वाले भाग पर । बीच के भाग में चित्रित फूल, पत्तियाँ और पक्षी इस कारण स्पष्ट, उज्ज्वल और आकर्षक लगते हैं कि वे विपरीत रंग की पृष्ठभूमि पर अंकित

किये गये हैं। लेकिन चद्दर की किनारी का रंग भी काला है और उसकी किनारी की पृष्ठभूमि का रंग भी काला-सा होने से वह न तो उज्ज्वल है और न आकर्षक।

विश्व-शान्ति

अगर तुम्हारा हृदय पवित्र है, तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा; अगर तुम्हारा आचरण सुन्दर है, तो तुम्हारे घर में शान्ति रहेगी; अगर घर में शान्ति है, तो राष्ट्र में सुव्यवस्था होगी; और अगर राष्ट्र में सुव्यवस्था है, तो समस्त विश्व में शान्ति और सुख होगा।

चित्र ३३. चीनी कहावत.

इस प्रकार का अन्य उदाहरण चित्र ३८ में है। इस चित्र में नारी का मुख काली पृष्ठभूमि में होने से एकदम मन को आकर्षित कर लेता है। पोशाक में भी मनुष्य प्रभुत्व के नियम को नहीं भूल सकता। चेहरे को आकर्षक बनाने के लिए कॉलर तथा टाई का प्रयोग किया जाता है। रंगीन पगड़ियाँ भी ध्यान आकर्षित करती हैं और चेहरे को प्रभुत्व प्रदान करती हैं।

चित्र ३४. पृष्ठभूमि के अभाव में मन्दसा पुष्प.
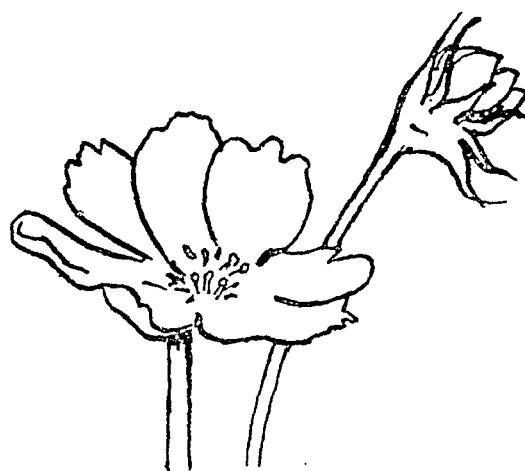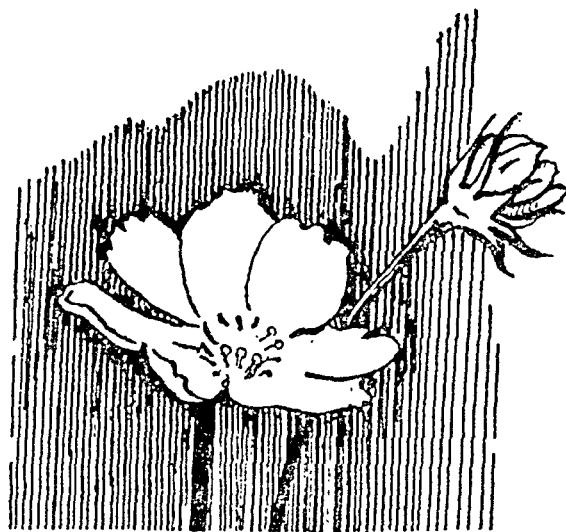
चित्र ३५. पृष्ठभूमि पर अंकित शोभायमान पुष्प.

चित्र ३६. फूलों को विपरीत रंग की पत्तियों द्वारा प्रधानता दी गई है.
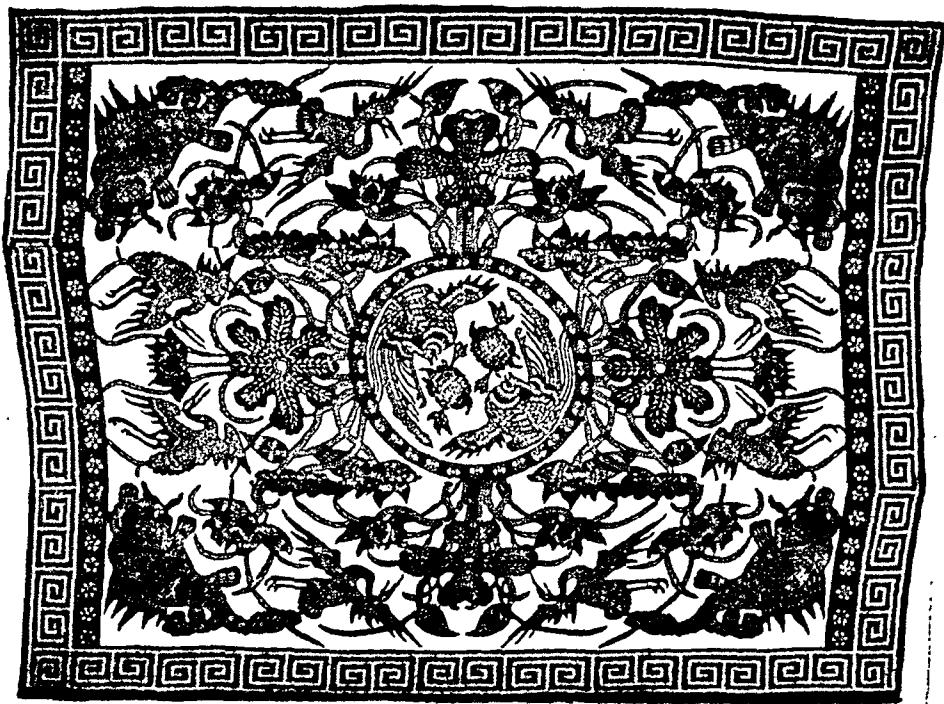
चित्र ३७. चद्दर.
(चीनी गणतंत्र के सौजन्य से प्राप्त)

चित्र ३८. प्रतीक्षा. चित्रकार—श्री नंदलाल बोस.

पिछले अध्यायों में कुछ सन्तुलन, लय तथा प्रभुत्व के बारे में सीखा। अब आप अपनी परीक्षण-शक्ति अथवा सौन्दर्यानुभूति को तीव्र बनाने में इन सिद्धान्तों का प्रयोग करके देखिये। प्रतिदिन के कार्यों में अर्थात् घर को सजाते समय, वस्तुओं को खरीदते समय, इनका उपयोग करने से आप देखेंगे कि आपका परीक्षण कितना सजीव और सौन्दर्यानुभूति कितनी वास्तविक हो गई है।

रेखा

जिस प्रकार चुम्बक की शक्ति अपने प्रभाव से लोहे को बेबस कर डालती है, तथा जिस प्रकार एक कुशल गायक सहस्रों सुनने वालों के हृदय को बरबस आकृष्ट कर लेता है उसी प्रकार रेखा और रंग में भी वह जादू है जो मानव के समस्त जीवन को अपनी तीव्रता से एकदम रंग डालता है।

रेखाओं का अध्ययन हम उनके एकाकी रूप में नहीं कर सकते। उनके परस्पर सम्बन्ध से हम उनके बहुविध रूपों का अध्ययन कर सकते हैं। रेखा से संलग्न वस्तु रेखा के प्रभाव को बहुत कुछ बदल देती है। चित्र ३९ में यह अच्छी तरह दिखाया गया है। इसमें सभी खड़ी रेखाएँ समानान्तर हैं किन्तु वे ऐसी नहीं दिखाई देतीं। चित्र ४० और ४१ में बीच की रेखा लम्बाई में समान होते हुए भी समान प्रतीत नहीं होती।

रेखा द्वारा अक्षरों में भिन्न प्रकार के लक्षण, भाव और गुण प्रकट किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, देखिए चित्र ४२ और ४३।
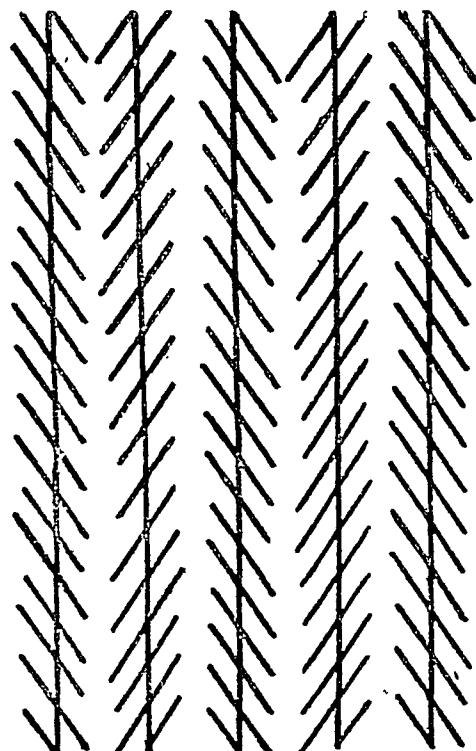
चित्र ३९. सभी खड़ी रेखाएँ समानान्तर हैं.

चित्र ४२ में सीधी रेखाओं वाले अक्षर कठोरता व शक्ति के भाव को प्रकट करते हैं, और चित्र ४३ में घुमावदार रेखाओं द्वारा निर्मित अक्षर कोमलता और सुन्दरता के सूचक हैं।

'बधाई' शब्द स्वयं शिष्टता, सुन्दरता व शोभा का द्योतक है। अतः जब कभी किसी को 'शुभ कामना' व 'बधाई-पत्र' भेजना हो तो
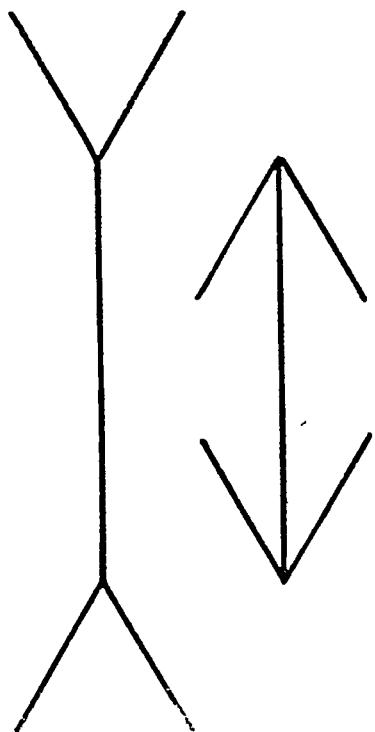
चित्र ४०. चित्र ४१.

ऐसे अक्षरों का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिनसे सुन्दरता का भाव प्रकट हो।

अब हम मकानों के दरवाज़ों का अध्ययन करेंगे। जो दरवाज़े व खिड़कियाँ सीधी रेखाओं द्वारा निर्माण किये गये हैं वे कठोरता व

चित्र ४२.

शक्ति के सूचक हैं (चित्र ४४)। और जिन दरवाजों में घुमावदार रेखाओं का प्रयोग किया गया है वे कमनीयता तथा सुन्दरता प्रकट करते हैं (चित्र ४५)।

चित्र ४६ और ४७ में दोनों मुखाकृतियाँ समान हैं किन्तु केशों के अलग-अलग विन्यास ने उन्हें एक दूसरे से भिन्न बना दिया है।

चित्र ४३.

चित्र ४८, ४९, ५० और ५१ में पड़ी और खड़ी रेखाओं का प्रभाव दिखाया गया है। चित्र ४८ में खड़ी रेखाएँ घास का बोध कराती

हैं। ये खड़ी रेखाएँ स्थिरता और पूर्ण शान्ति का भाव उत्पन्न करता हैं। यदि हम इन खड़ी रेखाओं को झुका दें जिस प्रकार चित्र ४६ में

चित्र ४४.

दिखाया गया है, तो इनमें एक गति दिखाई देगी। जहाँ पहले पूर्ण शान्ति का भाव था वहाँ अब एक श्रम और संघर्ष का भाव उपस्थित मिलेगा।

इसी प्रकार सीधी पड़ी रेखाओं का उदाहरण लें। चित्र ५० में उन्हें देखने में सहसा हमें शान्ति का बोध होता है। विस्तृत मैदान में नदी की
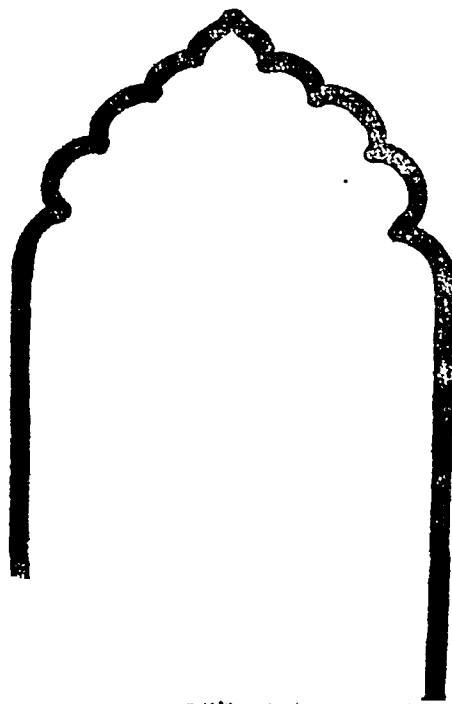
चित्र ४५.

प्रवाहित रेखा और सूर्यास्त के समय के आकाश की ओर देखकर हम इसकी प्रतीति कर सकते हैं। सीधी रेखाओं के प्रभाव से ही हम ऐसा पाते हैं। वे हमारे मस्तिष्क को सहसा प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं।

अब हम टेढ़ी रेखाओं के प्रयोग का अध्ययन करेंगे। आप चित्र ५१ में देखेंगे कि ये टेढ़ी रेखाएँ किस प्रकार शक्ति-संचार प्रकट करती हैं।

चित्र ४६. मुखाकृति.

जब कि सीधी रेखाएँ शक्ति की प्रतीक होती हैं, ये टेढ़ी रेखाएँ गति और वेग का बोध कराती

चित्र ५२ जीवन और मृत्यु दोनों ही का प्रतीक है। इसमें सरू का वक्ष मत्य का द्योतन करता है और बादाम का वृक्ष जीवन की घोषणा

चित्र ४७. मुखाकृति.

करता है। चित्र ५३ उन रेखाओं को उपस्थित करता है जिनके आधार पर यह चित्र निर्मित हुआ है। इस चित्र में खड़ी रेखा स्तब्धता और अचलता का बोध कराती है और टेढ़ी रेखाएँ शक्ति और जीवन बतलाती हैं।
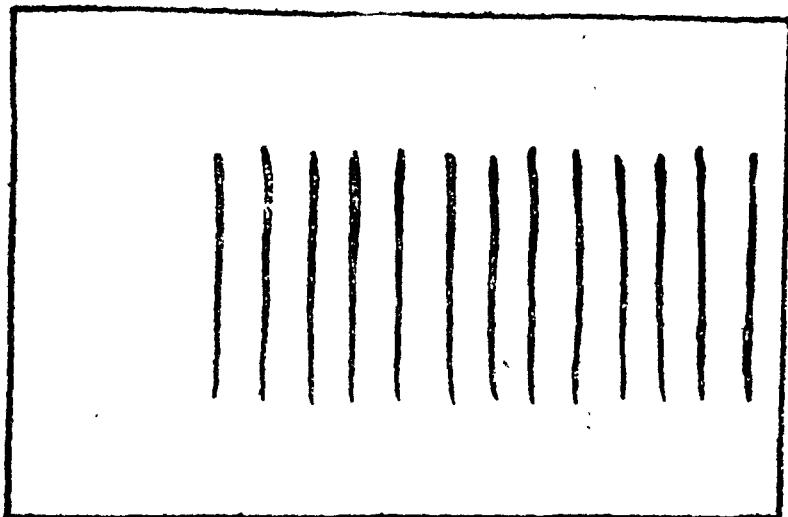
चित्र ४८. घास शान्त रूप में.
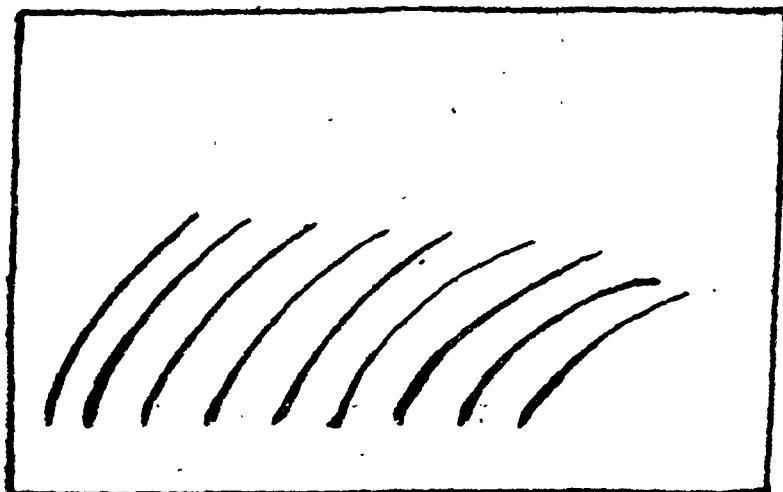
चित्र ४६. घास गतिशील रूप में.
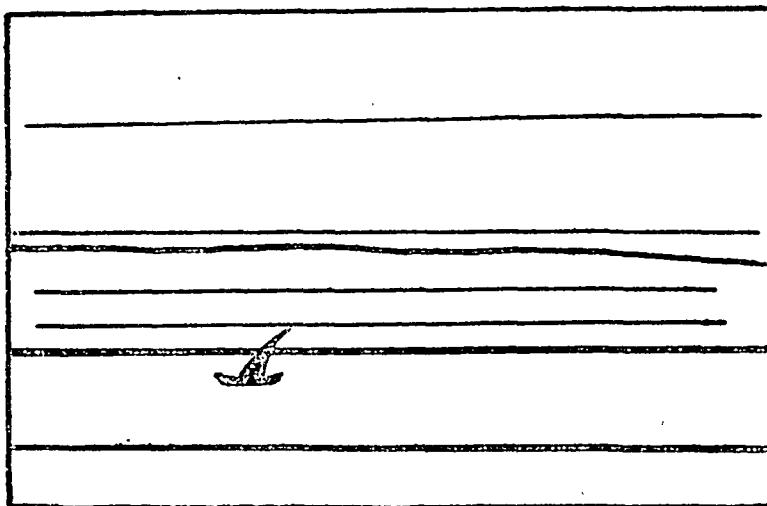
चित्र ५०. शान्त वातावरण.
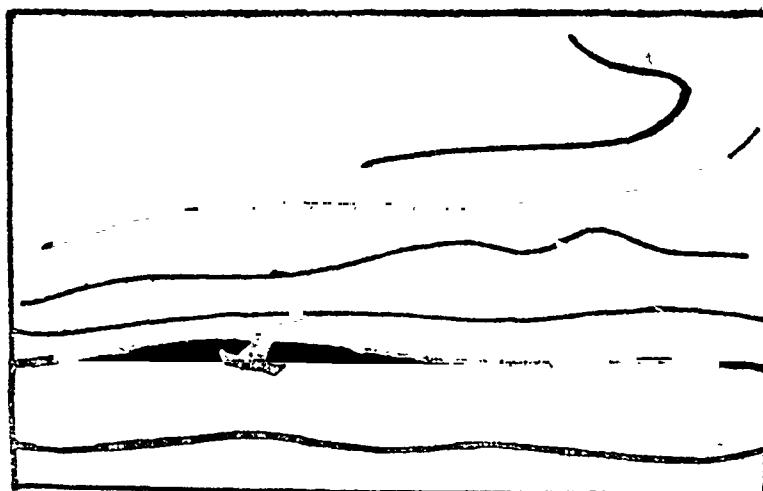
चित्र ५१. गतिशील वातावरण.
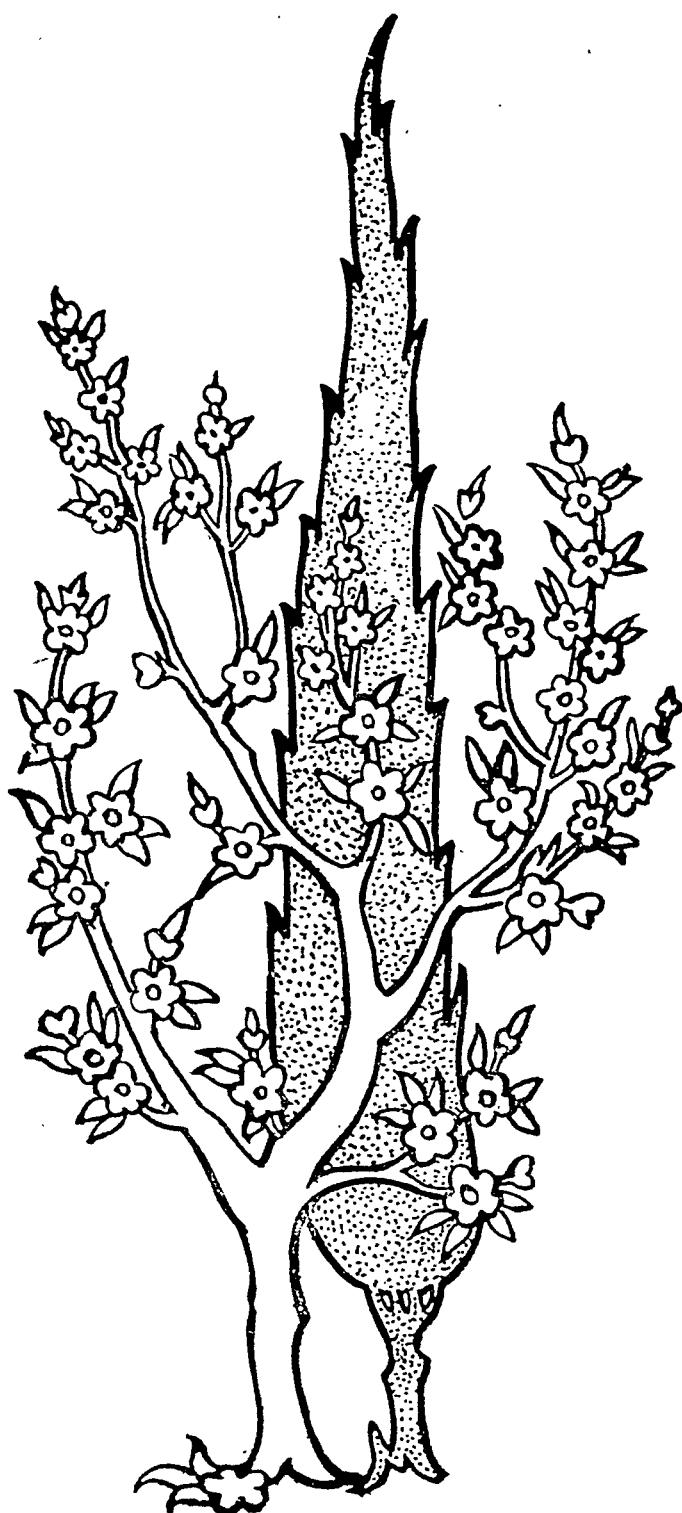
चित्र ५२. जीवन और मृत्यु.
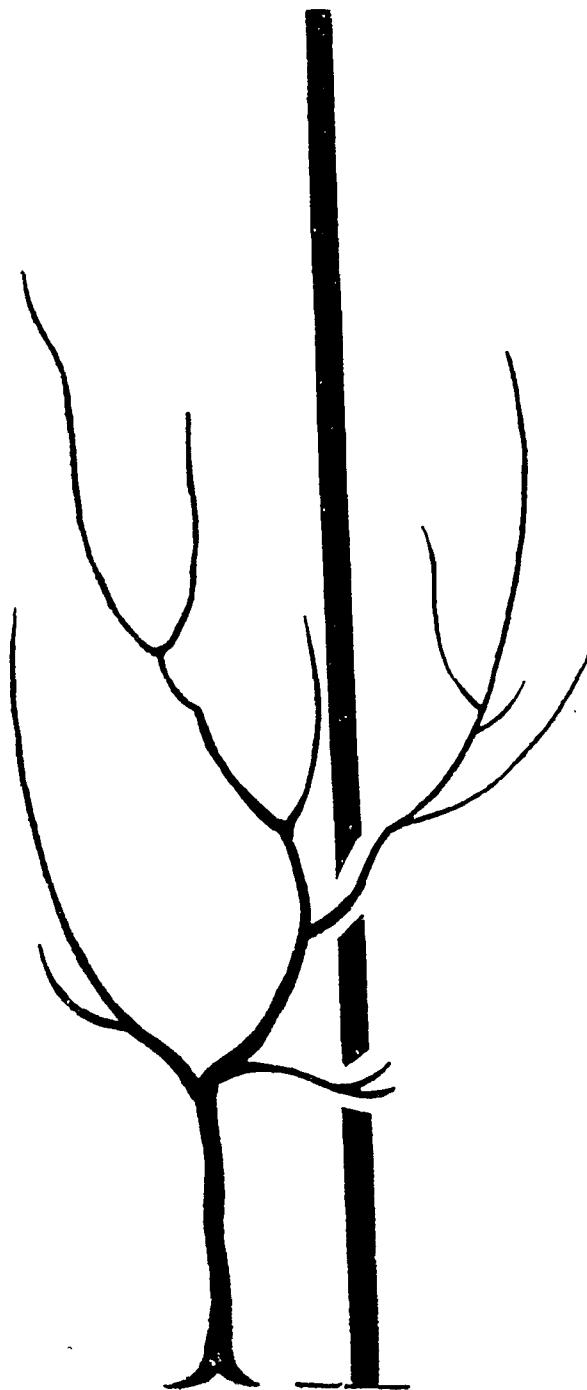
चित्र ५३. टेढ़ी रेखाएँ जीवन की प्रतीक हैं और सीधी रेखा जड़ता की प्रतीक है.

खड़ी रेखा
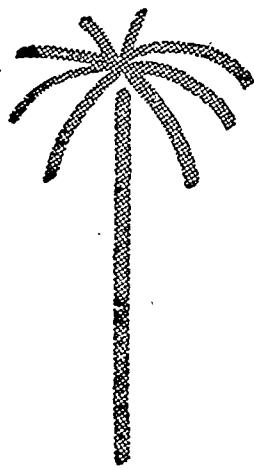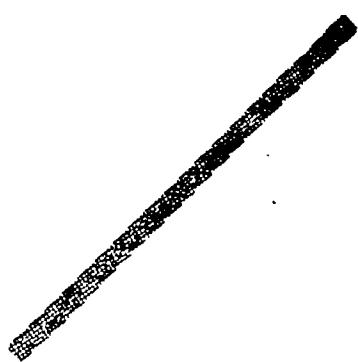
चित्र ५४. खड़ा वृक्ष.

चित्र ५५. गिरता हुआ वृक्ष.

चित्र ५४, ५५ में रेखाएँ खींचकर यह बताया गया है कि किस प्रकार कागज़ पर हम विभिन्न रेखाएँ खींचकर विभिन्न भावों का प्रदर्शन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए चित्र ५४ में एक खड़े वृक्ष को चित्रित किया गया है। खड़ी रेखा अचलता का बोध कराती है। चित्र ५५ में उसी वृक्ष को तिरछा करके दिखाया गया है। तिरछी रेखा गति की सूचक होती है।

खड़ी रेखा

तिरछी रेखा
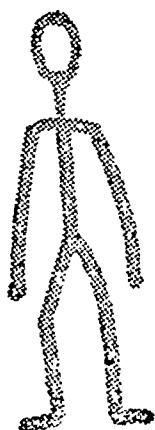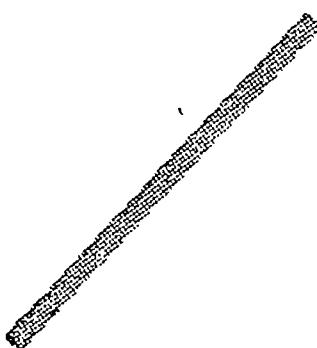
चित्र ५६.
खड़ा बालक.

चित्र ५७.
दौड़ता हुआ बालक.

अब दूसरा उदाहरण लें। चित्र ५६ में बालक की सीधी खड़ी आकृति जहाँ निश्चलता बताती है वहाँ चित्र ५७ में तिरछी रेखाओं से अंकित उसी बालक की आकृति गतिमय और दौड़ती हुई-सी जान पड़ती है।

रेखाओं के अनेक सम्भव प्रभावों को हम उन्हें आसपास की वस्तुओं के साथ उनकी संगति से तथा उन्हें लम्बी और छोटी, मोटी और पतली, खड़ी और पड़ी आदि अवस्थाओं में रखकर प्रयत्न कर सकते हैं। आप
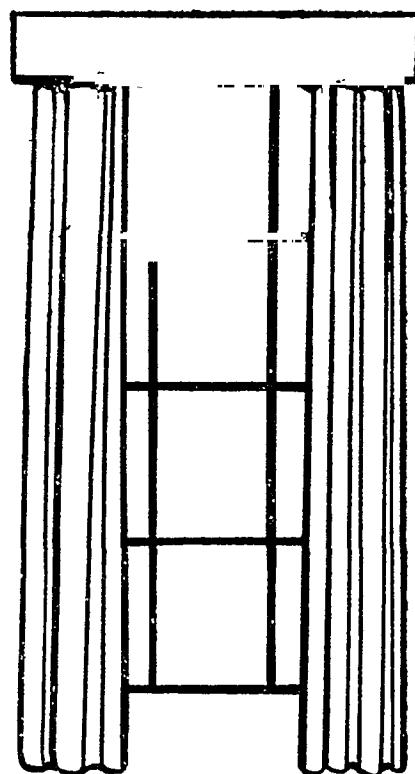
चित्र ५८. सीधी खड़ी तहों वाला पर्दा.

इन रेखाओं को अपने दैनिक व्यवहार की वस्तुओं—जैसे अपने पहनावे के वस्त्रों या अपने घर के पर्दों—में भी प्रयोग करके देखें। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति दिन भर अपने कार्यालय में कार्य करता है और सन्ध्या समय थका हुआ अपने घर वापस आता है। ऐसी अवस्था में आप सोचें कि

उसके कमरे के पर्दे किस प्रकार रखे जायें ताकि उसे विश्रान्ति मिल सके। क्या वे सीधे खुले हों (चित्र ५८) या टेढ़े-तिरछे जैसे चित्र ५९ में दिखाये गये हैं। यह स्वाभाविक है कि जो पर्दा सीधे ढंग से खुला होगा और जिसकी तहों की खड़ी रेखाएँ बन रही होंगी, वह उसकी आँखों को शान्ति प्रदान करेगा। यह परिणाम खिड़की, पर्दे और कमरे की
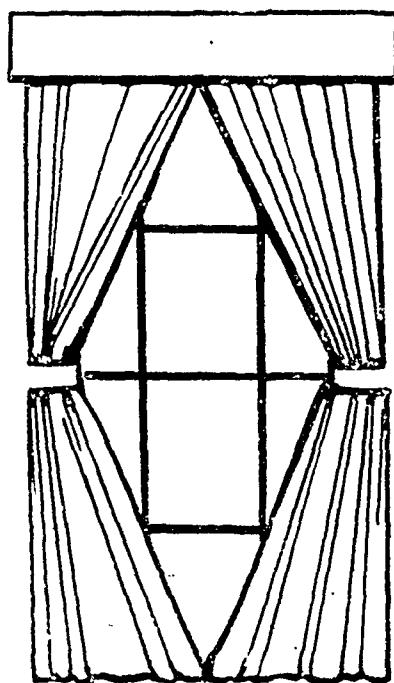
चित्र ५९. तिरछी तहों वाला पर्दा.

सीधी रेखाओं की संगति के कारण ही सम्भव हो सकेगा। ये रेखाएँ समानान्तर होने के कारण एक सुन्दर, शान्तिपूर्ण एकरसता रखती हैं। चित्र ५९ में पर्दे की रेखाएँ तिरछी हैं और खिड़की की रेखाओं से समानान्तर नहीं हैं। इसका परिणाम एकरसता और शान्ति का भंग है।

रंग

अनादि काल से लेकर आधुनिकतम मानव-जीवन में रंगों की स्पृहा सौन्दर्य की जिज्ञासा ही चिरन्तन है। यह ऋतुओं के मोहक शृंगार हैं। ये हमारे सुख, आनन्द और उत्सवों से गहरा सम्बन्ध रखते हैं। विश्व के सभी राष्ट्र रंगों की सुन्दरता और आवश्यकता को स्वीकार करते हैं और उत्साह के साथ इनका प्रयोग भी करते हैं। रंग सौन्दर्य के अन्यतम उपकरण हैं।

रंगों का लालित्य संगीत के श्रुतिमधुर संगीतों की भाँति ही ग्रहण किया जा सकता है। उसे प्रत्यक्ष करने के लिए तर्क और ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। रंग के स्पर्श से कोई भी वस्तु एक विशिष्ट रूप धारण कर लेती है। यदि रंगों का प्रयोग भली प्रकार सोच-विचार कर किया जाय तो उनमें आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति की अनेकरूपिणी

क्षमता होती है। ये हमें आनन्दित भी बना सकते हैं और मलिन भी। वास्तव में हर एक रंग हमारे मन पर भिन्न प्रभाव डालता है। यथा—

लाल—स्नायुविक उत्तेजना उत्पन्न करता है और भावनाओं को उभाड़ता है।

नारंगी—घाव भरने वाला है और जल्दी ही चिड़चिड़ापन उत्पन्न करता है।

नारंगी-पीला—उष्ण, जीवनप्रद और चमकीला है।

पीला—प्रसन्नता और उमंग उत्पन्न करता है।

पीला-हरा—प्रसन्नताप्रद और सुस्मित है।

हरा—शान्तिसूचक और कोमल है; न उष्ण है न शीतल, वरन् उष्ण तथा शीत दोनों के प्रभाव को दूर करता है।

नीला—शीतलता का सूचक, शान्ति उत्पन्न करता है, गम्भीरता प्रकट करता है, और आध्यात्मिक है।

नीला-हरा—गम्भीरता व शान्तिपूर्ण है।

बैंगनी-नीला—कठोर, दृढ़ और अविचलित भाव व्यक्त करता है।

बैंगनी—शान, महत्त्व और राजसी प्रभाव प्रगट करता है।

सफेद—सात्विकता, सत्यता और शुद्धता प्रकट करता है।

प्रकृति अपनी ऋतुओं को भिन्न-भिन्न रंगों से सजाकर भाँति-भाँति के प्रभाव उपस्थित करती है। लाल रंग एक उष्ण प्रकार का रंग है, इसी लिए लोग शीत ऋतु में लाल रंग के कपड़े अधिक पहनते हैं। इसी प्रकार हरा और नीला रंग शीतल रंग हैं अतः गर्मियों में लोग इन रंगों के कपड़े अधिकतर पहनते हैं। अच्छे रंगों की परख प्राचीन वस्त्रों, कालीन आदि देखकर तथा प्राचीन और आधुनिक चित्रकारों की कृतियों के अध्ययन से हो सकती है। अच्छे रंगों की संगति में वही प्रभाव निहित है जो एक लय-ताल युक्त मधुर संगीत में हमें प्राप्त होता है।

यदि हम चित्र ६० को देखें तो हमें ऐसा लगेगा कि रगों के उपयोग से यह और भी प्रभावशील वनाया जा सकता है जैसा कि चित्र ६१ में
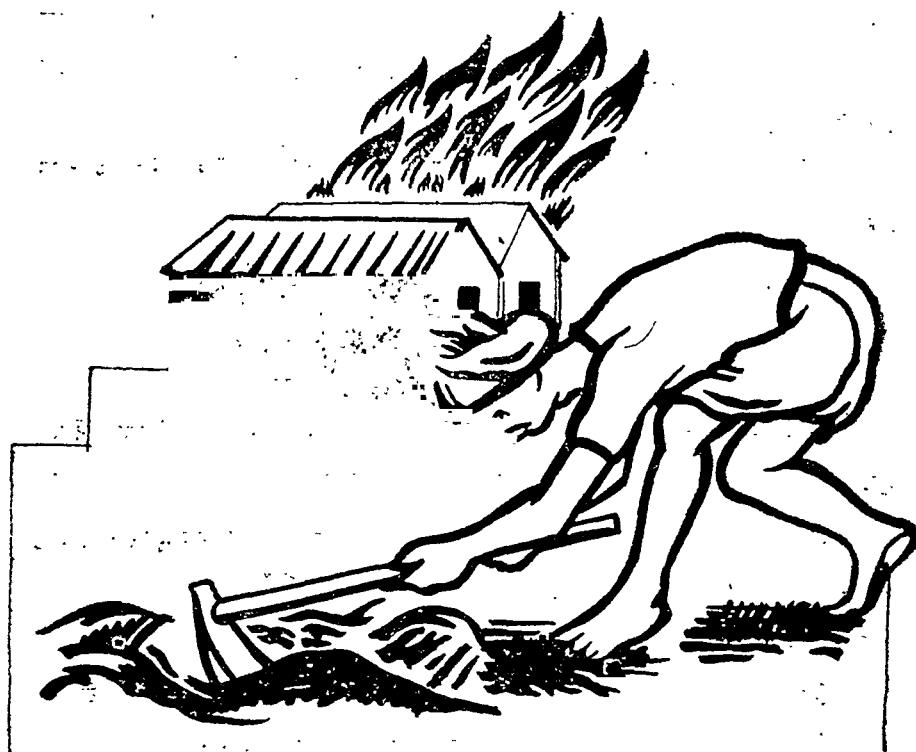
ागलगे तब

खो कु

चित्र ६०. रंग के अभाव से मन्द तथा अनिश्चित चित्र.
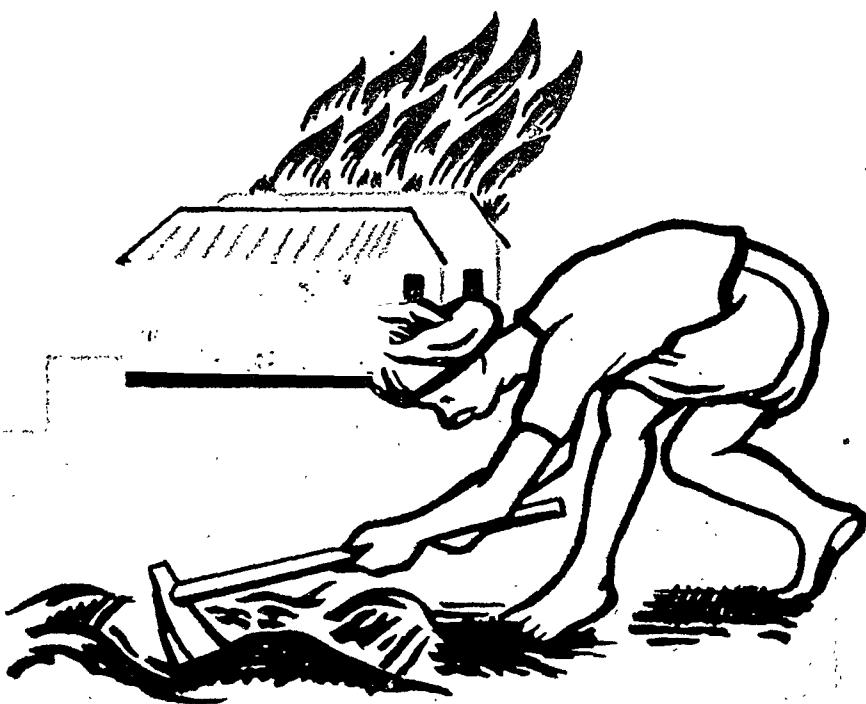
आग लगे तब खोदे कुआँ

चित्र ६१. रंग के प्रयोग से सुन्दर तथा अर्थपूर्ण चित्र

क तेज पीला
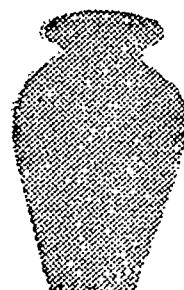
ख हलका पीला

ग धुंधला पीला

चित्र ६२. पात्र.

दिखाया गया है। कुटीर की गहरी छाया हमारी दृष्टि को तुरन्त ही नीचे के अंकित व्यक्ति पर केन्द्रित कर देती है जो चित्र का वास्तविक प्रयोजन है।

चित्र ६२ पर बने पात्रों को देखकर यदि हम यह कहें कि तीनों ही पीले रंग के हैं तो इतना ही कहना पर्याप्त न होगा। ध्यान दें कि इसमें क चित्र तेज़ पीला, ख चित्र हलका पीला और ग चित्र धुंधला पीला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी रंग के उचित वर्णन के लिए हम उसे तीन प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। कोई भी रंग अपनी रंगत, बल और सघनता के अनुसार त्रिविध रूप में आभासित होता है। रंगों की इन तीन प्रमुख विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए।

रंगत—रंग का नाम, जैसे पीला।

बल—हलका या गहरा, जैसे गहरा पीला या हलका पीला।

सघनता—तीव्र पीला, जैसे तेज़ पीला।

रंगों की इन तीन विशेषताओं को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम फिर से विचार करेंगे। उदाहरण रूप 'तेज़ हलका पीला' रंग ले लें। इसमें तेज़ शब्द रंग की सघनता बताता है, हलका रंग की शक्ति बताता है और पीला शब्द रंग बताता है।

चित्र ६३ में एक सुन्दर बात बताई गई है। आप इसे थोड़ी दूरी पर रखकर देखें तो श्वेत पृष्ठभूमि पर पीले अक्षर दिखाई नहीं पड़ेंगे। किन्तु वही पीले अक्षर चित्र ६४ में काली पृष्ठभूमि पर स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं और प्रभावशाली भी लगते हैं। इस प्रयोग में हम पाते हैं कि रंग स्वयं अपने आप में पूर्ण नहीं प्रत्युत वह अपने चारों ओर के रंगों की भी अपेक्षा रखता है। आप अपने उपयोग में आने वाले वस्त्रों में रंगों के सामंजस्य का प्रयोग करें। दूसरे व्यक्ति जिन रंगों का प्रयोग अपने पहनावे तथा अपने घरों के लिए करते हैं उनका भी अध्ययन करें।

इसी प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं और मनुष्यकृत वस्तुओं में भी रंगों को देखें। यह सारा विश्व ही रंगमय है। हम इनका प्रयोग और उपयोग कर सकते हैं।
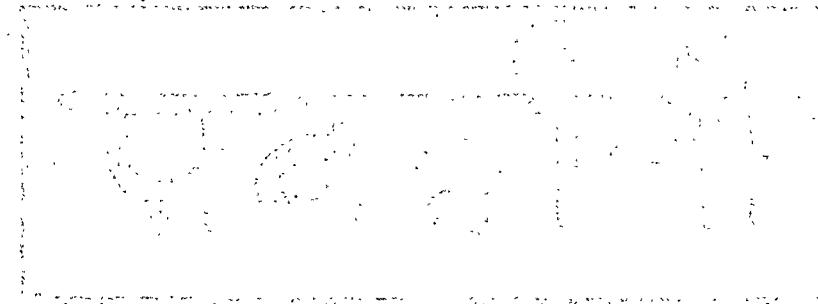
चित्र ६३. सफेद पृष्ठभूमि पर पीले रंग के अक्षर दूर से स्पष्ट दिखाई नहीं देते.
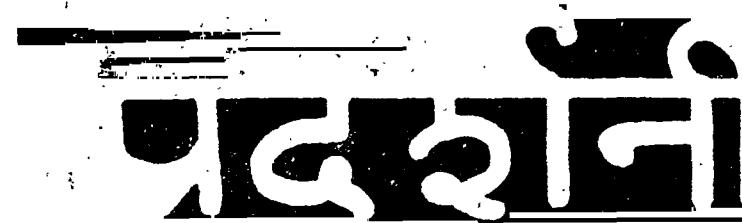
चित्र ६४. काले कागज पर पीली लिखावट दूर से चमकने लगती है.

चित्र ६५ में दोनों वर्ग एक ही आकार के हैं, फिर भी सफेद वर्ग काले वर्ग की अपेक्षा बड़ा दिखाई पड़ता है।
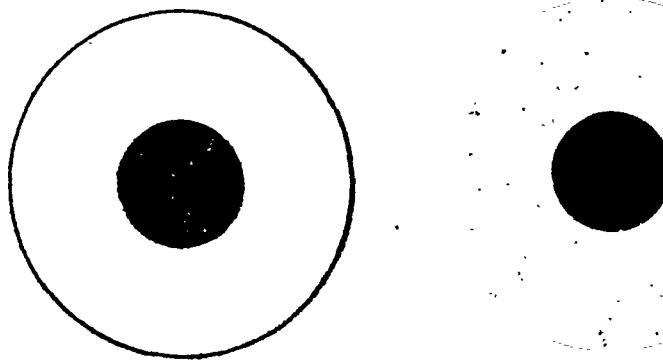
चित्र ६५. सफ़ेद वर्ग और काला वर्ग.

दैनिक जीवन में हम विविध प्रकार से रंगों के सम्बन्ध में अपना ज्ञान बढ़ा सकते हैं। काले कपड़ों से कोई मोटा-ताज़ा व्यक्ति छोटा दिखाई पड़ेगा। सफ़ेद वस्त्र दुबले-पतले मनुष्य को भी कुछ स्थूल दिखाई पड़ने में मदद कर सकेंगे। दीवारों का रग यदि हलका हो तो घर विशाल दिखाई देगा, और वही दीवारें यदि गहरे रंग में पोती हुई हों तो ऐसा लगेगा मानो घर का आकार कुछ घट-सा गया है।
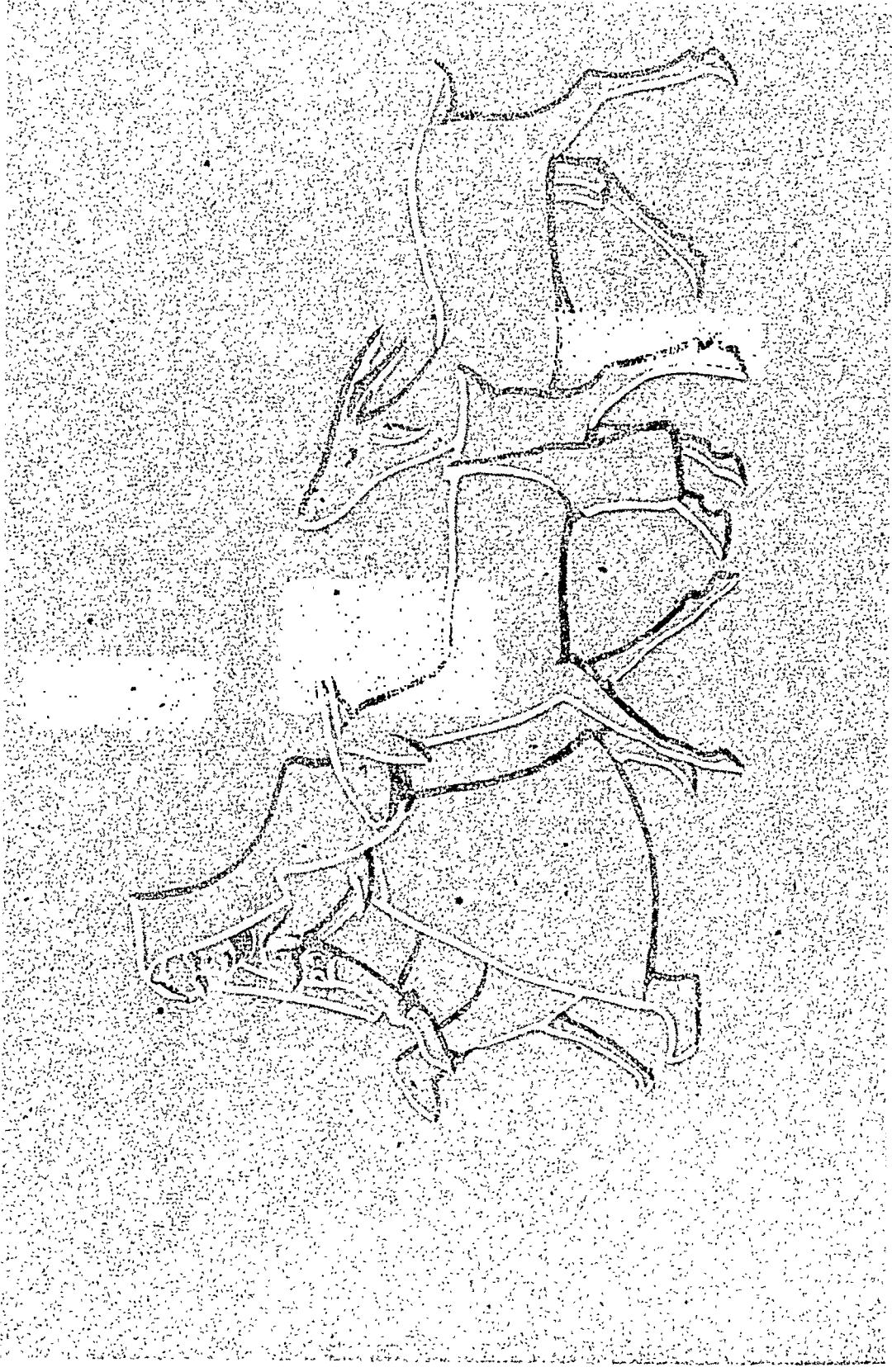
ित्र ६६. ममत्व. (१४ वर्ष की आयु की वालिका के नाखून द्वारा चित्रित ।

कला-शिक्षण क्या है ?

बेसिक स्कूलों तथा विद्यालयों में कला-शिक्षण किस प्रकार का होना चाहिए इस विषय का विवेचन आरम्भ करने से पूर्व लेखक चाहता है कि कला के अर्थ का स्पष्टीकरण हो जाय । कला क्या है ? कला कोई एक वस्तु नहीं है । वास्तव में कला उस क्रमिक विकास को कहते हैं जो निम्न चार अवस्थाओं में से निकलती है—

१. आन्तरिक इच्छा;

२. उपरोक्त इच्छा को पूर्ण करने के लिए तन्मयतापूर्वक किया गया कार्य;

३. इच्छा व क्रिया का परिणाम—कलाकृति; और

४. उस परिणाम का दर्शक पर पड़ने वाला प्रभाव ।

उदाहरणार्थ, बच्चे के अन्दर पहले एक प्रकार की इच्छा उत्पन्न

होती है जो उसको आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देती है। इसके बाद दूसरी अवस्था वह आती है जब कि बच्चा लग्नपूर्वक काम में जुट जाता है। तृतीय अवस्था में वह अपनी इच्छा व क्रिया द्वारा एक कृति को जन्म देता है। और चतुर्थ अवस्था वह है जो दर्शक पर अपना प्रभाव छोड़ देती है।

शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह उक्त चारों अवस्थाओं के परस्पर सम्बन्ध और उनके महत्त्व को समझे। इसका अभिप्राय यह है कि वह उन अवस्थाओं पर अधिक ध्यान दे जिनके द्वारा बच्चा अपनी उन्नति को प्राप्त करता है—अपने स्वयं का विकास करता है—शिक्षक के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि कला केवल कुछ थोड़े-से प्रतिभा-शाली बालकों के ही लिए नहीं है—स्कूलों में कला-शिक्षण हर बालक की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला होना चाहिए। जिन बालकों में ईश्वरदत्त प्रतिभा नहीं है क्या उनके लिए हमें भी कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए? कला जीवन की सच्ची सहचरी है और प्रत्येक बालक को ही इस सच्ची सहचरी की नितान्त आवश्यकता है। इस आवश्यकता को पूरा करना हमारा ही कर्तव्य है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कला-शिक्षण के कार्यक्रम में विभिन्न ज्ञान तथा अनुभवों का समावेश हो ताकि उसके द्वारा बच्चे की नवीन रचना प्रस्तुत करने की इच्छाओं को. उसके बुद्धि-विकास को, उसकी भावनाओं को, उसकी शारीरिक आवश्यकताओं को विकसित होने का अवसर मिल जाय। कला का वास्तविक आनन्द ज्ञान प्राप्त करने में, सूक्ष्म निरीक्षण में, समस्याओं के सुलझाने में, और अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में है। बच्चे अपनी समस्याओं को सुलझाने और अपनी भावनाओं को प्रकट करने में तभी सफल हो सकते हैं जब कला-शिक्षण के कार्यक्रम में ज्ञान और क्रिया का संतुलन हो जाय। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है—

१. साधारण ज्ञान;

२. विशेष ज्ञान;
३. रचनात्मक क्रिया; और
४. निर्दिष्ट क्रिया।
इनको हम क्रमशः समझाने का प्रयत्न करते हैं।

साधारण ज्ञान

यह ज्ञान किसी एक विशेष विषय जैसे इतिहास, विज्ञान, भूगोल, साहित्य इत्यादि से सम्बन्धित नहीं रहता, वल्कि हम इसके द्वारा छात्रों को कुछ साधारण वातों का, जो कृति वनाने में काम आएँ, ज्ञान कराते हैं। यह नितान्त आवश्यक है कि साधारण ज्ञान की वातें कलाकृति के लिए आवश्यक ज्ञान से सम्बन्धित हों तो उसके बनाने में सहायक सिद्ध हो।

कल्पना कीजिए कि विद्यार्थी महात्मा बुद्ध की ध्यानावस्था का चित्र अंकित करना चाहता है। इस चित्र में महात्मा बुद्ध को सुजाता से भट लेते हुए दिखाया जायेगा। अब इस चित्र बनाने से पूर्व कुछ अध्ययन करना आवश्यक है। इस चित्र के सभी अंग बनाने में यथार्थता पर पूर्ण रूप से ध्यान देना होगा और यह तभी सम्भव है जब कि इसके लिए उचित पुस्तकों का अध्ययन किया जाय। ऐसे विषयों पर भी जो सर्व-विदित हैं जैसे कि महात्मा गांधी जी का आन्दोलन, यह उचित ही होगा कि हम प्रत्येक वात को प्रामाणिक रूप से पता चलाकर ही हाथ में लें।

विशेष ज्ञान

इसका सम्बन्ध उन सब पदार्थों तथा अस्त्रों से है जो किसी कृति के वनाने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। यह विशेष ज्ञान इन पदार्थों के संपर्क से प्राप्त हुए अनुभवों पर आधारित है और इसके अन्तर्गत हम वच्चों को नये-नये प्रयोगों तथा उनके द्वारा उद्धृत सौन्दर्य से परिचय कराते हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द ले लीजिए जैसे—रेखाएँ, रंग, समूह, विन्यास, संतुलन, इत्यादि इत्यादि। इस प्रकार का ज्ञान वालकों की कृति में अपने भावों की अभिव्यक्ति करने में विशेष सहायक

होता है और इसके द्वारा वह अपनी रचना की तथा औरों की रचनाओं की सम्यक् रूप से सौन्दर्य की अनुभूति कर सकता है।

रचनात्मक क्रिया

अब हम कला के रचनात्मक रूप को देखते हैं। इसका अर्थ है कलाकार की उस कृति में कुछ अपनी नई देन, और उस नई देन के लिए आवश्यक है नये प्रयत्न तथा उन प्रयत्नों द्वारा प्राप्त नये परिणाम और फिर उन परिणामों का मूल्यांकन।

जिस कला की कृति में कलाकार के विचार, भाव व उद्वेग विद्यमान हों उसे रचनात्मक कृति अथवा कलाकार की नई देन के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भाव व उद्वेग का अर्थ है उन शब्दों से, जैसे हर्ष, विषाद, भय। सिनेमाघर अथवा रंगशाला हर्ष का द्योतक है। दरगाह व समाधि-स्थान विषाद को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार आदर व श्रद्धा के द्योतक हैं मन्दिर व मस्जिद, और भय तथा घृणा का द्योतक है कारागृह। कलाकार इसी प्रकार अपनी कृति में कुछ अपनापन भर देता है।

रचनात्मक क्रिया वह है जो कलाकार के अन्तर से उमड़कर उसके व्यक्तित्व को व्यक्त कर देती है। शिक्षक को इस व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि बच्चे को पदार्थ चुनने में तथा अपने भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण स्वतन्त्रता हो। उदाहरण के लिए एक शिशु काग़ज़ में से काटकर हाथी बनाना चाहता है, यहाँ वह केवल मात्र रेखाएँ ही नहीं खींचना चाहता, कुछ बनाना चाहता है। यही रचनात्मक क्रिया है। दूसरा शिशु काग़ज़ के कटे हुए हाथी को तिरस्कृत करके मिट्टी का हाथी बनाना चाहता है। कोई बालिका इन सबको निरर्थक-सा जान उस हाथी के चित्र को मेजपोश पर बनाना चाहती है। इन सब चीज़ों में बच्चों को बन्धनों से सदैव मुक्त रखना ही शिक्षक का उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षक को चाहिए कि वह अपने नन्हें कलाकारों को ऐसी वस्तुएँ वनाने को बाध्य न करे जो उनके लिए कोई मूल्य नहीं रखतीं । वरन् शिक्षक को सदैव समयानुसार कार्य करना चाहिए । उदाहरण के लिए यदि कोई वालक वुत वनाने में आज रुचि नहीं रखता है और इस काम को कठिन समझता है, तो वही बालक दशहरे के अवसर पर प्रसन्नता तथा उत्साह से रावण इत्यादि के वुत व पुंतले बना लेगा । स्पष्ट है कि बच्चे वही काम करते हैं जिसमें उन्हें आनन्द आता है और अध्यापक को किसी भी मूल्य पर उनकी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध नहीं जाना चाहिए ।

रचनात्मक क्रिया को उत्साहित करने के लिए शिक्षक को बच्चों से उनके अनुभवों के बारे में प्रश्न करने चाहिएँ और कभी-कभी बालकों को अपनी मनपसन्द वस्तुओं का सूक्ष्म विवरण देने को भी कहिए । जैसे-जैसे वालक अपनी अभिरुचि व्यक्त करते जायें शिक्षक को वह सब श्याम-पट पर अंकित करते जाना चाहिए । पुनः इन सबके ऊपर विचार करके इनमें से प्रत्येक से कितनी प्रेरणा-शक्ति मिलती है इस बात का ध्यान रख कर ही विषय चुनना चाहिए । इससे बच्चों को अपना चुनाव करने में वहुत सुविधा होगी । परन्तु अन्तिम निर्णय सदैव बच्चों के ही ऊपर छोड़ दीजिये, क्योंकि यदि आप कृति में कुछ नवीनता देखना चाहते हैं तो वह तभी आ सकती है जब वालक स्वयं उसमें अभिरुचि रखता हो ।

निर्दिष्ट क्रिया

इसके अन्तर्गत हम उन क्रियाओं की गणना करते हैं जिनके द्वारा वालक किन्हीं विशेष कौशल में दक्ष हो जाते हैं, जैसे पैन्सिल फेरकर उतारना, नकल करना, प्रमाणित करना तथा समालोचना, नियन्त्रण और अभ्यास आदि ।

उपरोक्त क्रियाओं में कुशलता व प्रवीणता विना भावों को व्यक्त करना असम्भव है । शिक्षा उसकी कुशलता के साथ-साथ 'स्व' को विकसित करती है और नियंत्रित भी । यही शिक्षा का सबसे आवश्यक उद्देश्य है ।

बालक की भावनाओं को विकसित होने देना चाहिए, पर ऐसे रूप में कि वह अपने साथ-साथ औरों को भी ऊपर उठाए और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करे।

निर्दिष्ट क्रिया स्वयं ही रचनात्मक क्रिया नहीं है। परन्तु यह जब पूर्ण रूप से बालक द्वारा ग्रहण करली जाती है तब यह रचनात्मक क्रिया के लिए मार्ग खोल देती है। यह तो एक साधन मात्र है रचनात्मक क्रिया के ध्येय तक पहुँचने का। इसका कार्य बालकों को स्वयं के व्यक्त करने के ढंग में सुधार लाना है।

अतः शिक्षक को अपने कार्य की ऐसी योजना बनानी चाहिए जिसमें इन चारों बातों का पूर्ण समिश्रण हो। इसके लिए प्रारम्भ में यदि शिक्षक अपनी योजना को इन चारों बातों के अनुसार विभाजित करके पहले एक बार लिख ले तो वह अपने उद्देश्य में अधिक सफल हो सकेगा। यदि समयाभाव से या और किसी कारण ऐसा न हो सके तब भी कम-से-कम मन में पहले से ही योजना का क्रम निर्धारित करना पाठ की सफलता व पूर्णता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ध्यान रहे कि अध्यापक को बालक की सहायता उसके स्तर के अनुसार ही करनी चाहिए जिससे वह समझ सके और हस्त-संचालन की नियमितता में सफल हो सके। उदाहरण के लिए हम यहाँ एक सुव्यवस्थित योजना का नमूना पृष्ठ ८४ और ८५ पर दे रहे हैं, जिसमें यह चारों बातें दी गई हैं। इस उदाहरण में हमारे पाठ का मुख्य विषय दीपकों का अध्ययन है।

सर्वप्रथम शिक्षक को बच्चों से पूछना चाहिए कि उनके घर में किस प्रकार के दीपक हैं। बच्चों द्वारा बताये गये भिन्न-भिन्न प्रकार के दीपकों के नामों को ब्लैक-बोर्ड पर लिखना चाहिए। इसके पश्चात् उन दुकानों व फैक्टरियों का उल्लेख करना चाहिए जहाँ यह बनाये जाते हैं। यदि किसी विद्यार्थी ने ऐसा कोई स्थान देखा हो तो उससे विस्तारपूर्वक विवरण सुनाने के लिए कहना चाहिए। विद्यार्थियों को भिन्न-

भिन्न प्रकार की कण्डियें अथवा दीपकों का ज्ञान किसी कहानी द्वारा भी कराया जा सकता है । अन्त में अध्यापक को विद्यार्थियों द्वारा यह निश्चित करा लेना चाहिए कि कौन-कौन से दीपक व कण्डियाँ उन्होंने बनाने हैं ।

अध्यापक को फिर विद्यार्थियों द्वारा निश्चित कण्डी व दीपकों को बनवाना चाहिए और उसके लिए आवश्यक पदार्थों की ओर संकेत करना चाहिए । बच्चों को बाँस की तीलियाँ काटने का सही तरीका सिखाना चाहिए । इसके पश्चात् फानूस व कण्डी के प्रयोग के लिए उचित काग़ज़ के प्रयोग पर विचार करना चाहिए ।

इसके अतिरिक्त शिक्षक यह भी दिखा सकता है कि किस प्रकार मिट्टी के दीपक तैयार किये जा सकते हैं ।

विषय : दीपकों का अध्ययन

ज्ञान

साधारण ज्ञान	विशेष ज्ञान
दीपकों के प्रकार : दीवा, प्रदीप, मशाल, मोमबत्ती कंडील व फानूस, और अन्य प्रकार के दीपक जो भारतवर्ष के बाहर पाए जाते हैं।	कुम्हार चाक के द्वारा मिट्टी के दीपक बनाकर आग में पका देता है, जिससे वे लाल रंग के और पक्के बन जाते हैं। अलग अलग कारखानों में मोमबत्तियाँ, लालटेन इत्यादि तैयार किये जाते हैं।
दीपक कहाँ बनते हैं ? कुम्हारों के यहाँ, कारखानों में।	काग़ज़ तथा लोहे काटने वाली कैंचियों का प्रयोग। लेवी बनाना और उसका प्रयोग।
दीपक भारतवर्ष में तथा दूसरे देशों में किन-किन त्यौहारों पर जलाये जाते हैं ?	
दीपक बनाने का सामान : मिट्टी, टीन, पीतल, मोम और रूई या धागा, पतले रंगीन काग़ज़ और बाँस की खपचियाँ।	

विषय : दीपकों का अध्ययन

क्रिया	
निर्दिष्ट क्रिया	**रचनात्मक क्रिया**
भिन्न-भिन्न काल के तथा भिन्न-भिन्न देशों में बनाये जाने वाले दीपकों के चित्रों का अध्ययन करना ।	पेन्सिल तथा रंग द्वारा दीपकों का निर्माण करना ।
कुम्हार की शिल्पशाला का निरीक्षण । उन स्थानों का निरीक्षण करना जहाँ मोमबत्ती, प्रदीप, लालटेन बनते तथा बिकते हैं ।	
	मिट्टी, मोम या किसी अन्य सामग्री से दीपक बनाना ।
	रंगीन पतले कागज़ों की कंडील व फानूस बनाना ।
	तरबूज या अन्य सब्जी की खोखल में छेद करके कंडील व फानूस बनाना ।
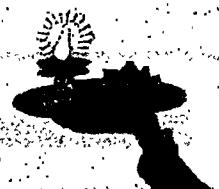
चित्र ६७.

लेखक के एक विद्यार्थी द्वारा बनाया गया बधाई पत्र

चित्र ६८.
लेखक के एक विद्यार्थी द्वारा बनाया गया बधाई पत्र.

चित्र ६६. बचपन के साथी. (१४ वर्ष की आयु के बालक द्वारा चित्रित चित्र.)

विन्यास-शिक्षण का एक उदाहरण

किसी भी प्रकार का विन्यास बच्चों को बनाना सिखाते समय शिक्षक को चाहिए कि वह क्रमानुसार नमूना श्याम-पट पर बनाता जाय, जिससे बच्चे बनाने की कला को सीख लें। पूरा बना हुआ नमूना इतने महत्त्व का नहीं जितना कि विन्यास का क्रमिक विकास। यह उनमें नया विन्यास बनाने को उत्साहित करेगा और यही कला का उद्देश्य है।

शिक्षक के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह पूर्ण विन्यास को श्याम-पट पर उनके समक्ष उपस्थित करे, परन्तु यह आवश्यक है कि वह विन्यास बनाने में कोई कठिनाई अनुभव न करे और शीघ्रता से बनाता चला जाय। उसके सामने मुख्य उद्देश्य यही होना चाहिए कि बच्चे नये विन्यास (डिज़ाइन) के लिए सोचना प्रारम्भ करदें।

विन्यास सिखाते समय शिक्षक को पहले बताना चाहिए कि इस विन्यास में मुख्य वस्तु ५ इंच लम्बी और १½ इंच चौड़ी एक पट्टी है जिसमें हमने विन्यास बनाना है। पदार्थ जो हमें प्रयोग करना है वह है एक कली। इस कली को चित्रित करने का ढंग चित्र ७० में बताया गया है। शिक्षक को यह कली ब्लैक-बोर्ड पर बनाकर दिखा देनी चाहिए। जिसके अनुसार हमें कार्य करना है वह योजना है—एक पट्टी को वर्गों में विभाजित करना (चित्र ७४)। समस्या है उनको अधिक-से-अधिक आकर्षक ढंग से सजाना। संक्षेप में हम इन्हें कह सकते हैं:

(१) मुख्य वस्तु—५ इंच लम्बी, १½ इंच चौड़ी पट्टी।
(२) पदार्थ—कली।
(३) योजना—वर्गीकरण।
(४) समस्या—आकर्षक नमूना बनाना।

चित्र ७०.

जब बच्चे इस बात का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करलें कि किस प्रकार का विन्यास उन्हें बनाना है, कौन से पदार्थ उन्हें काम में लाने हैं और किस
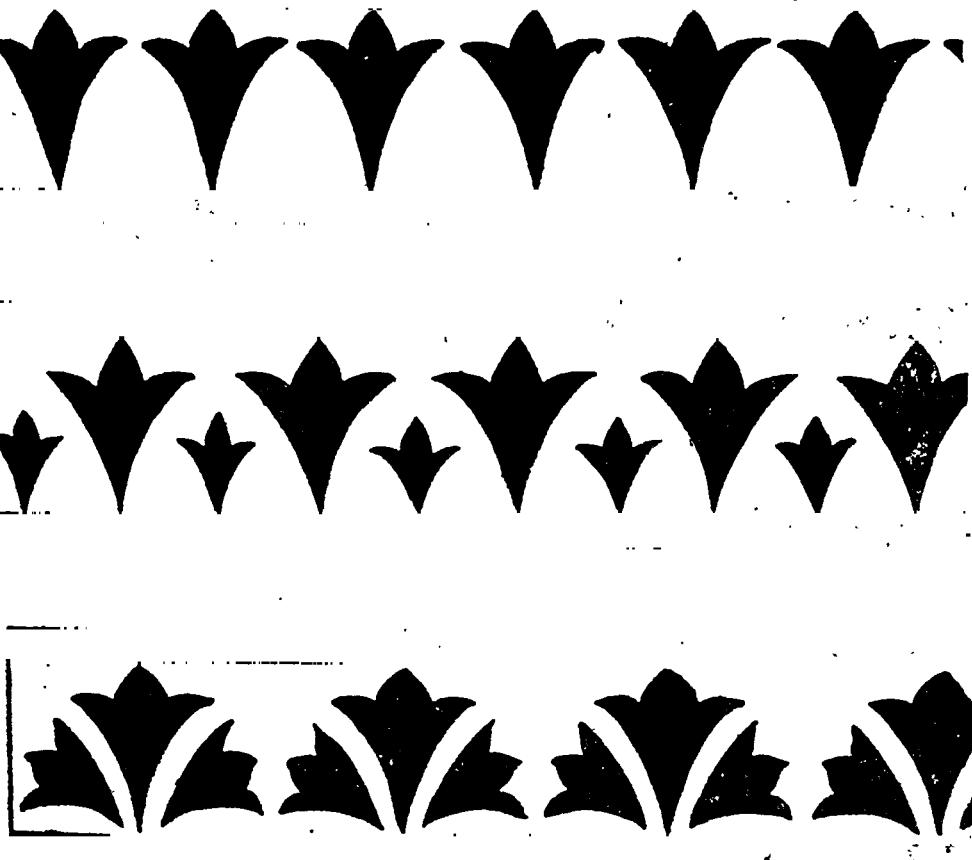
चित्र ७१. चित्र ७२. चित्र ७३.

प्रकार की योजना के अनुसार उन्हें काम करना है तब उस विन्यास को वह अपनी कापियों में उतार सकते हैं। उदाहरण के लिए चित्र ७१, ७२, ७३ और ७४ को देखिए।

चित्र ७१ में एक ही कली को बार-बार बना दिया गया है। चित्र ७२ में इसी तरह की एक छोटी कली और एक बड़ी कली को बार-बार क्रमानुसार बनाकर विन्यास बनाया गया है।
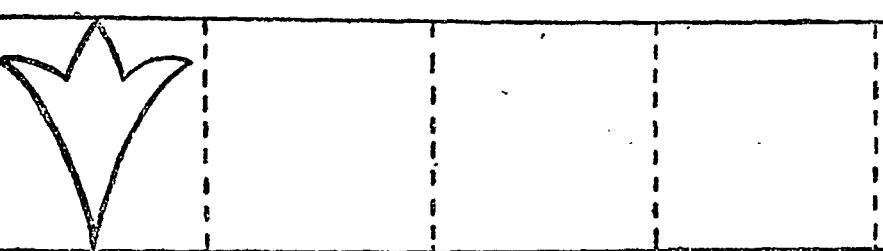
चित्र ७४.

नये विन्यास बनाना सिखाना

जब बच्चे फिर काम करने आए तो उनके सामने उन्हीं मुख्य चीज़ों को रखिए और बच्चों को स्वतन्त्रता दीजिए कि वह अपनी इच्छा के अनुसार इन कलियों को बनाएँ। जो बालक सर्वप्रथम विन्यास में विचित्रता लाने का प्रयत्न करे उसे श्याम-पट पर बनाने को कहिए। इससे अन्य बच्चों को भी प्रेरणा मिलेगी। प्रत्येक बालक को नया नमना बनाने की ओर ही प्रेरित करना चाहिए—वास्तव में कला का यही प्रथम लक्षण है।
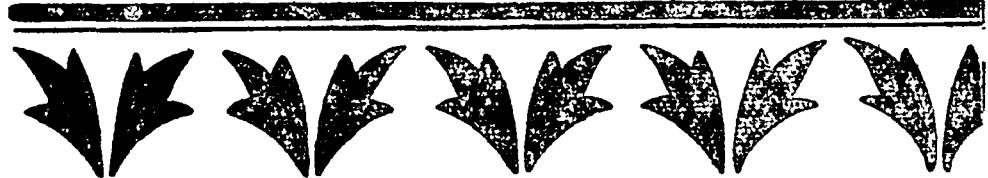
चित्र ७५. चित्र ७६. चित्र ७७. चित्र ७८. चित्र ७९.
विन्यास के कुछ नये नमूने.

अध्याय ६

कला का अन्य विषयों से सम्बन्ध

अनेक परीक्षण करने के पश्चात् आज मनोवैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मानव-मस्तिष्क भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभाजित नहीं है वरन् एक अखण्ड शक्ति है जो प्रचलित बातों को मस्तिष्क में जमा करती जाती है और नये अनुभव करने के लिए मानव को प्रेरित करती है। इसी प्रकार मानव नया ज्ञान प्राप्त करता जाता है। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जो कुछ ज्ञान हम बालक को देना चाहते हैं वह भी एक सुव्यवस्थित रूप में ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि बच्चे का मस्तिष्क तो वही है जो उस ज्ञान को अपने अन्दर एकत्र करके रखेगा। अतः शिशु-मस्तिष्क की किसी भारी कठिनाई को समझाने के लिए तथा उसको और ज्ञान प्राप्त करने में सुविधा देने के लिए यह आवश्यक है कि हम जितना ज्ञान बालक को दें उसको एक

सुव्यवस्थित रूप में उसके सामने प्रस्तुत कर दें जिससे वह सुगमता से उसे समझ सके। अतः प्रत्येक विषय को एक दूसरे से अलग करके पढ़ाने का आज के युग में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। आज प्रत्येक शिक्षक से यही आशा की जाती है कि वह अपने विषय को और विषयों के साथ जोड़ सके। क्योंकि किसी भी विषय का महत्त्व यहाँ तक ही है कि वह बच्चे के ज्ञान में क्या वृद्धि करता है और उसको कितना उत्साहित करता है। कोई भी विषय अपने आप में पूर्ण नहीं है। इतिहास को लीजिये, यदि हम भूगोल को इतिहास के साथ सम्बन्धित करके न पढ़ायें तो बच्चे के मस्तिष्क में भौगोलिक कारणों का देश की संस्कृति पर जो प्रभाव पड़ता है वह कभी भी स्पष्ट न हो सकेगा। इसी प्रकार कला को भी हमें सब विषयों से सम्बन्धित करना पड़ेगा, क्योंकि कला का ज्ञान से विशेष सम्बन्ध है और कला को एकदम एक अलग विषय बना देना कला को चार दीवारों में बन्द कर देने के समान है। कला हमारे वाता-वरण से सम्बन्ध रखती है और इसको उन्नत करने के लिए इसे वाता-वरण से अलग नहीं किया जा सकता।

व्यवहारिक जीवन में यह समस्या इस रूप में हमारे समक्ष आती है कि कला को और विषयों से कैसे जोड़ा जाय? इसका सबसे सहज व सुगम उपाय यही है कि बच्चे के सामने एक कलात्मक समस्या रख दीजिए। उसे किसी वस्तु का चित्र अंकित करने को कहिये और उसके साथ-साथ उस वस्तु के बारे में जितना ज्ञान दे सकते हैं, दे दीजिये। इससे बच्चे के दिल में उस वस्तु के प्रति आदर उत्पन्न होगा। वह उसकी महत्ता को समझेगा और उसको बनाने में उत्साह से भाग लेगा।

दृष्टान्त के लिए एक बालक गुलाब का फूल बनाना चाहता है। यद्यपि बालक इस फूल से भली भांति परिचित है, क्योंकि यह उसके वातावरण का एक अंग है और चित्र बनाना उसके भावों का तथा उद्-गारों का प्रगट होना मात्र है, तब भी इसके बारे में प्रचलित दन्त-कथाएँ

इसके सांस्कृतिक महत्त्व और साहित्यिक गौरव का ज्ञान बच्चे के मस्तिष्क को नया उत्साह देगा । जैसा कि हम जानते हैं कि अंग्रेज़ी साहित्य में गुलाब एक 'वार ऑफ़ रोज़ेज़' नामक लम्बी खूनी लड़ाई से सम्बन्धित है। गुलाब-जल का आविष्कार नूरजहां के नाम के साथ जुड़ा है। इसी प्रकार काव्य में गुलाब को उपमान के रूप में देखा गया है और गुलाब पर अनेक कविताएँ लिखी हुई मिलती हैं । यदि बच्चों को गुलाव के चित्र के साथ कविताओं के कुछ अंश भी उसके नीचे चिपकाने को कहा जाय तो बच्चों के लिए यह कितना ज्ञानवर्धक हो सकता है । वे अपने वातावरण को भी समझेंगे और वातावरण के प्रति कवियों के आदर-भाव के कारण को भी । विज्ञान हमारे वातावरण पर एक नई रोशनी डालता है। वह हमें केवल दूर से देखना और मुग्ध होना ही नहीं सिखाता वरन् उसको समझना तथा उसको उन्नत बनाना भी सिखाता है। वनस्पतिशास्त्र तथा रसतन्त्र के विद्वान् गुलाब की बनावट पर कुछ और ही ज्ञान देते हैं । इस प्रकार हमें कला को सब विषयों के साथ सम्बन्धित करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे हम शिशु कलाकारों को चारों ओर से सजग बना सकें।

इसी प्रकार एक और उदाहरण लीजिये। यदि बच्चे मकान बनाना चाहें तो इसके साथ ग्रह-निर्माण-कला के नियमों का, उनको सुन्दर एवं सुविधाजनक बनाने का ज्ञान होना आवश्यक है । बच्चों को बताना चाहिए कि जलवायु का ग्रह-निर्माण पर क्या असर पड़ता है। उदाहरण के लिए गर्म प्रदेशों में कच्ची मिट्टी व बाँस के मकान बनाये जाते हैं। जिन स्थानों पर वर्षा अधिक होती है वहाँ पर सीमेंट या पत्थरों से मकान बनाये जाते हैं। अतः जब विद्यार्थी मकान बनाना प्रारम्भ करें तो उन्हें अपने पदार्थों का इसी सब को ध्यान में रखते हुए चुनाव करना पड़ेगा । यदि वह हिम-प्रदेशों के मकान बनाना चाहें तो उसके द्वारा वह एस्कीमो के जीवन के बारे में भी कुछ अध्ययन करने को प्रेरित हो जाते हैं । काश्मीर में नौका-ग्रह बनाये जाते हैं जो पूर्णतया लकड़ी के

होते हैं । अतः बालक का ज्ञान-क्षेत्र एकदम विशाल और विस्तृत हो जाएगा और इस प्रकार कला और भूगोल के सच्चे सम्बन्ध को समझ सकेगा । इस ज्ञान-क्षेत्र को और भी विकसित करने के लिए बच्चों को तसवीरें दिखानी चाहिएँ । पुस्तकालयों में ऐसी अनमोल पुस्तकों का भंडार होना चाहिए जिससे बच्चों का ज्ञान केवल अपने देश तक ही सीमित न रहकर बाहर के देशों के ग्रह-निर्माण-शिल्प का भी अध्ययन कर सकें ।

जब बच्चे वास्तव में कार्य प्रारम्भ करेंगे तब उन्हें गणित ज्यामिति की सहायता की भी आवश्यकता अनुभव होगी, क्योंकि मकान के सम्पूर्ण अंशों को काटना, जोड़ना, तरह-तरह के आकार के टुकड़ों को काटना, कहीं सुन्दरता के लिए तिकोनी छतें बनाना इत्यादि । यह तब तक सम्भव न हो सकेगा जब तक उन्हें गणित न आता हो । इसके साथ ही साथ मकान बनाने के लिए सामान खरीदने के लिए दुकानदारों को पत्र लिखना, सम्पूर्ण व्यय का ठीक-ठीक हिसाब लिखते रहना भी उनको सब कार्यों के वास्तविक रूप में परिचित करा सकते हैं ।

इसी प्रकार अन्य विषय इतिहास आदि का भी कला में समुचित प्रयोग किया जा सकता है । गुप्तकालीन, मुग़लकालीन और राजपूतकालीन घरों की बनावट में सूक्ष्म अन्तरों का निरीक्षण बच्चों को सजग बना देता है । बच्चे सीख जाते हैं कि इतिहास को वर्तमान में कैसे प्रयोग करना चाहिए और यही इतिहास पढ़ाने का एकमात्र ध्येय है ।

इसी प्रकार अन्य विषयों का शिक्षक अपनी कुशलता से कला सिखाते समय उपयोग कर सकता है, अतः शिक्षक को सदैव इन धाराओं में निरन्तर सोचते रहना चाहिए । यही एक उत्तम शिक्षक से आशा की जाती है ।

आधुनिक शिक्षक के लिए तो कला और भी महत्त्व की वस्तु है । यद्यपि कला का स्वयं ही स्कूलों में एक विशेष स्थान है पर प्रत्येक शिक्षक

के लिए कुछ ड्राइंग का आना बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। श्याम-पट पर रेखाओं से चित्र बनाकर शिक्षक अपने कार्य को तथा बच्चों के समझने के कार्य को अत्यन्त ही सुगम बना सकता है। जिह्वा में वह शक्ति नहीं जो रेखा द्वारा प्रदर्शित चित्र में हो सकती है। चित्र द्वारा बच्चा वास्तविक पदार्थ का, उस चित्र का तथा उस चित्र के द्योतक शब्द का पूर्ण सम्बन्ध मस्तिष्क में स्थापित कर सकता है। विज्ञान जैसे विषयों में तो ड्राइंग को अनिवार्य स्थान है और इसके द्वारा वह विविध उपकरणों का ज्ञान तथा उनका विविध प्रकार से उपयोग करना तथा प्रयोगशाला में उनको ठीक प्रकार से लगाना यह सब रेखा-चित्रों द्वारा भली प्रकार समझाया जा सकता है।

विदेशी भाषा पढ़ाने में तो इसकी उपयोगिता इतनी अधिक है कि आजकल स्लाइड्स, फ़िल्म स्ट्रिप इत्यादि बनाकर बच्चों को वास्तविक पदार्थ से अभिज्ञ कराने का प्रयत्न किया जा रहा है और जिस शिक्षक को थोड़ी भी ड्राइंग आती है तो वह इस कला का बहुत ही सुगमता से स्थान-स्थान पर प्रयोग कर सकता है। शब्दों को पूरी तरह से समझने के लिए उस पदार्थ का कुछ ज्ञान आवश्यक है जिसके लिए वह शब्द प्रयोग किया जाता है। शब्द तो केवल चिन्ह स्वरूप है। वास्तविक उद्देश्य तो उन वस्तुओं के ज्ञान से है जिनके लिए उन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। विदेशी पशु जैबरा इत्यादि का आप कितना ही विवरण दे दीजिये पर बच्चे तब तक स्पष्ट रूप से न समझ पायेंगे जब तक उन्हें किसी चिड़ियाघर में ले जाकर दिखाया न जाय या फिर उसका चित्र न दिखाया जाय। इसी प्रकार विदेशी वस्तुओं का, विदेशी पोशाकों का ज्ञान बिना चित्रों के होना असम्भव है। जो शिक्षक इसकी महत्ता तथा उपयोगिता को समझता है उसके पास अपने को स्पष्ट करने के लिए दो साधन हो जाते हैं। वह बच्चों की दो इन्द्रियों का उपयोग कर सकता है— एक दृष्टि का, तथा दूसरे श्रवण का, और वह इन दोनों के बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यही सच्ची शिक्षा है।

सामूहिक और व्यक्तिगत शिक्षा का महत्त्व

सामूहिक शिक्षा में हमारा स्थान

जब हम किसी समुदाय को शिक्षा देने का प्रयत्न करते हैं तो इस कार्य को करने के लिए हमारे सामने तीन रास्ते होते हैं—(१) हम चाहें तो समस्त समुदाय पर अपना अधिकार जमा लें और उनको अपने विचार मानने पर बाध्य कर दें; (२) हम केवल सेवा-रूप में उनको पदार्थ इत्यादि चुनने में और वस्तु बनाने में सहायता करें; और (३) हम स्वयं उस समुदाय का अंग बन जाय और उनके साथ मिल कर कार्य करें।

यह स्पष्ट ही है कि यदि हम नन्हें कलाकारो के लिए वास्तविक एव सजीव वातावरण उत्पन्न करना चाहें तो हमें तृतीय मार्ग की ओर ही

के लिए कुछ ड्राइंग का आना बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। श्याम-पट पर रेखाओं से चित्र बनाकर शिक्षक अपने कार्य को तथा बच्चों के समझने के कार्य को अत्यन्त ही सुगम बना सकता है। जिह्वा में वह शक्ति नहीं जो रेखा द्वारा प्रदर्शित चित्र में हो सकती है। चित्र द्वारा बच्चा वास्तविक पदार्थ का, उस चित्र का तथा उस चित्र के द्योतक शब्द का पूर्ण सम्बन्ध मस्तिष्क में स्थापित कर सकता है। विज्ञान जैसे विषयों में तो ड्राइंग को अनिवार्य स्थान है और इसके द्वारा वह विविध उपकरणों का ज्ञान तथा उनका विविध प्रकार से उपयोग करना तथा प्रयोगशाला में उनको ठीक प्रकार से लगाना यह सब रेखा-चित्रों द्वारा भली प्रकार समझाया जा सकता है।

विदेशी भाषा पढ़ाने में तो इसकी उपयोगिता इतनी अधिक है कि आजकल स्लाइड्स, फ़िल्म स्ट्रिप इत्यादि बनाकर बच्चों को वास्तविक पदार्थ से अभिज्ञ कराने का प्रयत्न किया जा रहा है और जिस शिक्षक को थोड़ी भी ड्राइंग आती है तो वह इस कला का बहुत ही सुगमता से स्थान-स्थान पर प्रयोग कर सकता है। शब्दों को पूरी तरह से समझने के लिए उस पदार्थ का कुछ ज्ञान आवश्यक है जिसके लिए वह शब्द प्रयोग किया जाता है। शब्द तो केवल चिन्ह स्वरूप है। वास्तविक उद्देश्य तो उन वस्तुओं के ज्ञान से है जिनके लिए उन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। विदेशी पशु जैबरा इत्यादि का आप कितना ही विवरण दे दीजिये पर बच्चे तब तक स्पष्ट रूप से न समझ पायेंगे जब तक उन्हें किसी चिड़ियाघर में ले जाकर दिखाया न जाय या फिर उसका चित्र न दिखाया जाय। इसी प्रकार विदेशी वस्तुओं का, विदेशी पोशाकों का ज्ञान बिना चित्रों के होना असम्भव है। जो शिक्षक इसकी महत्ता तथा उपयोगिता को समझता है उसके पास अपने को स्पष्ट करने के लिए दो साधन हो जाते हैं। वह बच्चों की दो इन्द्रियों का उपयोग कर सकता है—एक दृष्टि का, तथा दूसरे श्रवण का, और वह इन दोनों के बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यही सच्ची शिक्षा है।

सामूहिक और व्यक्तिगत शिक्षा का महत्त्व

सामूहिक शिक्षा में हमारा स्थान

जब हम किसी समुदाय को शिक्षा देने का प्रयत्न करते हैं तो इस कार्य को करने के लिए हमारे सामने तीन रास्ते होते हैं—(१) हम चाहें तो समस्त समुदाय पर अपना अधिकार ज़मा लें और उनको अपने विचार मानने पर बाध्य कर दें; (२) हम केवल सेवा-रूप में उनको पदार्थ इत्यादि चुनने में और वस्तु बनाने में सहायता करें; और (३) हम स्वयं उस समुदाय का अंग बन जाय और उनके साथ मिल कर कार्य करें।

यह स्पष्ट ही है कि यदि हम नन्हें कलाकारों के लिए वास्तविक एव सजीव वातावरण उत्पन्न करना चाहें तो हमें तृतीय मार्ग की ओर ही

अग्रसर होना पड़ेगा । इसके पश्चात् हमारे सम्मुख वही समस्या आती है जो समुदाय के प्रत्येक सदस्य के सामने होती है अर्थात् उस समुदाय में अपना स्थान बनाना और सबके साथ समान सम्बन्ध स्थापित करना। यह समस्या हमारा अपना विशेष स्थान होने से और भी जटिल हो उठती है। हम इस स्थान को पूर्णतया छोड़ भी नहीं सकते. क्योंकि शिक्षक के नाते कक्षा को ठीक प्रकार शिक्षा देना, उनके लिए साधन जुटाना, उनकी सहायता करना तथा पहले से समस्त योजना बनाना हमारा एक कर्तव्य हो जाता है। परन्तु हमें बच्चों के लिए अधिक से अधिक चुनाव-सामग्री जुटानी चाहिए। अन्तिम निश्चय उन्हीं के हाथों में होना चाहिए। यह कार्य कितने अंश तक उन पर छोड़ा जाय यह भी कक्षा के बच्चों की आयु पर निर्भर है। हमें ऐसा वातावरण उपस्थित करना है जिसमें नन्हें कलाकार ज़ंजीरों से जकड़े भी न जायें और इसके विपरीत एकदम अनिश्चय के कारण घबरा भी न जायें।

योजना बनाने में तथा कार्य करने में बच्चों का सदैव हाथ होना चाहिए। सुझाव देने में हमें कभी भी कठोर व दृढ़ नियम नहीं बना देना चाहिए। हमें तो कला की चारों अवस्थाओं को ध्यान में रखकर कार्य करना है और उसके लिए सतत प्रयत्नशील रहना है। हमें तभी सहायता करनी चाहिए जब हम देखें कि वह सहायता बच्चे की रचनात्मक क्रिया को उत्सुक ही करेगी तथा उसका रास्ता सुगम बनायेगी।

बच्चों को भी कला के उद्देश्य से परिचित करने के लिए हमें योजना बनाने में साथ देना चाहिए। बच्चे तभी योजना बनाना व समस्याएँ सुलझाना सीखते हैं जब उनको यह कार्य करने की आवश्यकता अनुभव हो तथा वह इसकी उपयोगिता को जान लें। अतः हमें बच्चों के सम्मुख ऐसी परिस्थितियाँ व समस्याएँ उपस्थित करनी चाहिएँ जिससे वह इनको सुलझाकर कुछ अनुभव प्राप्त कर सकें। जो अनुभव बच्चे इस प्रकार प्राप्त करते हैं वही अनुभव उनके जीवन में काम आते

। उन्हीं को बच्चा अपने साथ विद्यालय से लेकर निकलता है अन्यथा स्कूल की समस्याएँ और जीवन की समस्याओं में तो काफ़ी अन्तर है । जीवन की समस्याएँ इस बदलती दुनिया के साथ-साथ तेजी से बदलती जा रही हैं और हमें शिक्षक होने के नाते बच्चों को इनका निर्भयता से सामना करने के योग्य बनाना चाहिए । बच्चों को आगे जाकर समस्याएँ ही सुलझानी हैं । सामूहिक शिक्षा बच्चों को समाज में प्रचलित व्यवहार में, मिल-जुल कर योजना बनाने में, तथा समस्याएँ सुलझाने में निपुण बना देती है, और बच्चों को सच्ची नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती है।

सामूहिक रूप से बनाया गया चित्र बच्चों में एक दूसरे के काम के प्रति आदर तथा प्रशंसा की भावना पैदा करता है तथा मिल-जुल कर काम करने की शिक्षा देता है। ऐसा चित्र काफ़ी बड़ा होना चाहिए जो कि एक अकेले वालक की शक्ति से बाहर हो। फिर जब बच्चे मिलकर जो कृति बनाते हैं उसको अपना समझते हैं और मानसिक सन्तोष एवं अपनत्व की भावनाएँ उनमें जागृत हो जाती हैं । इस तरह बच्चा कृति को पूरा करता है और कृति बच्चे के मानसिक विकास को पूर्ण करती है । यह मानसिक विकास केवल कला के लिए ही उपयोगी नहीं वरन् समस्त जीवन के लिए भी उपयोगी है। इस प्रकार बच्चों को वास्तविक जीवन के उपयुक्त शिक्षा प्राप्त होती है । बच्चे स्वाभिमान तथा देशा-भिमान को एक सही अनुपात में मिलाना सीख जाते हैं । यही शिक्षा का उद्देश्य है।

व्यक्तिगत शिक्षा में हमारा स्थान

प्रत्येक बच्चे का अपना अस्तित्व होता है, उसकी अपनी इच्छाएँ और भावनाएँ होती हैं । इसी प्रकार प्रत्येक बच्चे को ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति भी एक समान नहीं होती। सामूहिक शिक्षा व्यक्तिगत शिक्षा के विना कभी पूर्ण नहीं हो सकती । क्योंकि समूह व्यक्तियों से बनता है। प्रत्येक बच्चा समूह का अंग होते हुए भी अपना एक अस्तित्व रखता

है और यही अस्तित्व तो समाज का प्राण है। अन्यथा समाज निर्जीव हो जायगा यदि सब एक जैसे ही हो जायँ तो। समाज मनुष्यों की समानता और विविधता का अद्‌भुत सम्मिश्रण है और दोनों ही बातों का विकास समाज का जीवन है। अतः कुछ बातें हमें अवश्य ही बच्चों को सामूहिक रूप से बतानी पड़ेंगी। परन्तु केवल वह ही सब कुछ नहीं हो सकता। हमें प्रत्येक बच्चे की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए चुनाव-सामग्री एकत्र करनी पड़ेगी, जिससे प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। इस सबके लिए आवश्यक है बच्चे की शक्ति का पूरा ज्ञान। उसको पूरा-पूरा समझना ही उसके क्रमिक विकास में सहायता दे सकता है। हमें बालक को उसकी कमज़ोरी बताने के अतिरिक्त उसको उसकी शक्ति से भी परिचित कराना चाहिए। कमज़ोरी को बच्चा स्वयं जानता है। शक्ति की महत्ता को जानकर वह अपनी कमज़ोरी को स्वतः ही पूरा कर लेगा।

इस सबके लिए न केवल उपयुक्त वातावरण की ही आवश्यकता है बल्कि उनके लिए अत्यधिक प्रोत्साहक एवं रोचक कार्य-क्षेत्र उपस्थित करने की आवश्यकता है। प्रत्येक बालक कुछ पहले के अनुभव अपने मस्तिष्क में रखता है और वह हर क्षेत्र में उसी के अनुसार दिलचस्पी प्रदर्शित करता है। अतः वातावरण व चुनाव-क्षेत्र प्रस्तुत करने में उनका हाथ होना तो अत्यन्त ही आवश्यक है जिससे वह अपने मनपसन्द कार्य चुन सकें, उन कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक सामग्री एवं उपकरणों का ज्ञान प्राप्त कर सकें और स्कूल के वातावरण का पूरा-पूरा उपयोग कर सकें।

अतः उत्तम कला-शिक्षण के हेतु हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ प्रयोग में लाने चाहिएँ। एक पदार्थ जैसे कागज या मिट्टी ही समस्त बालकों के मन की साध को पूरा नहीं कर सकती। हमें प्रत्येक बालक की इच्छा को देखते हुए विभिन्न उपकरण प्रस्तुत करने चाहिएँ।

अपनी कक्षा का हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि प्रत्येक शिशु अपनी शक्ति तथा अवस्था के अनुसार आगे बढ़ सके । आज यह बात स्पष्ट हो गई है कि कला में औसत बच्चा कोई नहीं होता । कुछ बच्चे बहुत निपुण तथा होनहार होते हैं, कुछ मन्द बुद्धि वाले होते हैं, पर यह बुद्धि की शक्ति ऐसी है कि कोई भी एक बच्चा दूसरे बच्चे के समान नहीं हो सकता । अतः हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे प्रत्येक बालक अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर सके, चाहे वह तीव्र बुद्धि वाला हो या मन्द बुद्धि वाला । उसको अपने क्षेत्र में आगे बढ़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिससे वह अपनी आवश्यकता व इच्छाओं को अधिकांश रूप में पूर्ण कर सके ।

और विषयों की अपेक्षा कला में रचनात्मक कार्य को अधिक महत्व दिया जाता है और प्रत्येक कृति कलाकार के लिए एक अपना अलग अस्तित्व रखती है । यदि हम बच्चों की कृतियों में उनके व्यक्तित्व की झलक देखना चाहते हैं तो निश्चय ही हमें बच्चे की शक्ति, इच्छा तथा मन में संकलित विभिन्न प्रभावों का अध्ययन करना पड़ेगा और ऐसा कार्यक्रम बनाना पड़ेगा जो प्रत्येक की आवश्यकता को पूर्ण करे । यह आवश्यक नहीं कि सभी बच्चे एक ही चित्र पर काम करें । प्रत्येक को अपने कार्य चुनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिससे वह अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर सके ।

हमारी शिक्षा का व्यावहारिक रूप

समूह और व्यक्ति विशेष की रुचियों को दृष्टि में रखते हुए हमें एक मध्य स्तर को ग्रहण करना चाहिए । उसमें सामान्य रूप से सब की रुचि की अनुकूलता, सन्तुलन और माधुर्य हो । हमें किसी छात्र को किसी निश्चित दिशा में बाध्य न कर उसकी हो मौलिक प्रतिभा को उसकी शक्ति पर विकसित होने का अवसर देना चाहिए ।

अध्याय ११

कला के उपकरण और उनका प्रयोग

हमारे चारों ओर की दुनिया आज तीव्रता से बदलती जा रही है और इसलिए शिक्षक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह बच्चों को जितने उपकरणों से परिचित करा सके उतना अच्छा है। कठोर से कठोर पदार्थों से लेकर कोमल पदार्थों तक अनेकों तरह के पदार्थ एकत्र किये जा सकते हैं। कुछ चीज़ें तो प्राकृतिक हैं, जैसे मिट्टी तथा घास; और कुछ ऐसी होती हैं जो कारखानों द्वारा बेकार घोषित कर दी जाती हैं, जैसे चमड़े तथा कपड़े के कटे हुए टुकड़े। यह कारखानों द्वारा फेंका हुआ माल हरएक स्थान पर अनगिनत संख्या में मिल सकता है। इसी प्रकार घरों में गत्ते के डिब्बे, कपड़े की कत्तरें, धागे, समाचारपत्र, चीनी के डिब्बे, लकड़ी के टुकड़े इत्यादि, और अनेकों वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं जिनसे अनमोल वस्तुएँ तैयार की जा सकती हैं।

चित्र ८०.
अच्छे ढंग से घड़ी गई पैन्सिल
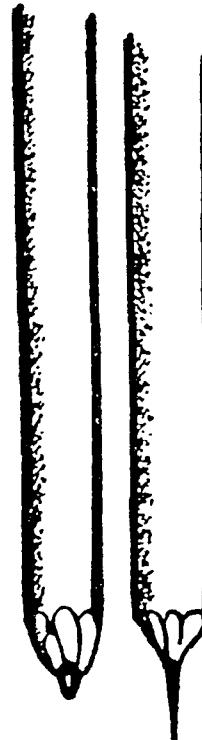
चित्र ८१.
बुरे ंग से घड़ी गई पैन्सिलें.

प्रत्येक पदार्थ को कलात्मक कृति में परिवर्तन कर देना कला का स्वभाव है। जिसमें कला के प्रति सच्ची लगन होती है वह प्रत्येक सहज प्राप्त वस्तु के प्रति सजग रहता है। अथवा यूँ कहना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ उसके लिए एक चुनौती है। उसको वह प्रयोग तथा सजावट के योग्य बनाने का मार्ग खोजता है और सच्चा कलाकार निरन्तर इसी खोज में निमग्न रहता है तथा प्रत्येक पदार्थ को प्रयोग में लाता है। कुछ पुरानी वस्तुओं को और कुछ नई वस्तुओं को मिलाकर अद्भुत सम्मिश्रण पैदा करना कला-शिक्षण का जीवन है। कलाकार को इसलिए अपने उपकरणों से भली प्रकार परिचित होना चाहिए अर्थात् उसे ज्ञान होना

चाहिए कि लकड़ी की अपेक्षा साबुन पर नक्काशी करना कहीं अधिक सुगम है। अतः पहले उसे नक्काशी साबुन पर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बालकों को कला के उपकरणों का उचित प्रयोग, उनकी सँभाल व देख-रेख करने का भी कुछ प्रारम्भिक ज्ञान दिया जाना चाहिए। उनको बता देना चाहिए कि चाक या चाक की टिकियों के टुकड़ों को ऐसे ही नहीं फेंक देना चाहिए। गोंद, रंग इत्यादि के डिब्बों को भली प्रकार बन्द करके रखना चाहिए। चित्रित कागज़ों की दूसरी परत को कई प्रकार काम में लाया जा सकता है। कागज़ के टुकड़े पर रंग को थोड़ा-सा लगाकर उसका प्रभाव देखा जा सकता है। यदि प्रारम्भ में ही यह सब ज्ञान बच्चों को दे दिया जाय तो वे इन उपकरणों के प्रति अपने मन में आदर की भावना हृदयों में लेकर विद्यालयों से निकलते हैं।

पैन्सिल

ड्राइंग के कार्य के लिए कई तरह की कठोर से कठोर तथा मृदु से मृदु सुरमे वाली पैन्सिलें बाज़ार में मिलती हैं। ६-बी, ५-बी, ४-बी, ३-बी, २-बी की पैन्सिलें कोमल सुरमे वाली होती हैं और इनसे लिखने में एक काली लकीर कागज़ पर आ जाती है। इसके विपरीत ६-एच, ८-एच, ७-एच, ६-एच, ५-एच, ४-एच, ३-एच, २-एच और १-एच की पैन्सिलों का सुरमा बहुत कठोर होता है और बहुत ज़ोर से लिखने पर भी एक सलेटी-से रंग की रेखा आती है। अतः कौन से नम्बर की पैन्सिल प्रयोग की जानी चाहिए यह तो कार्य के स्वभाव तथा कागज़ की विशेषता पर निर्भर है। साधारण कार्य के लिए एच-बी पैन्सिल काफ़ी अच्छी है। आरम्भ में चित्र सीमा इत्यादि डालने में कठोर सुरमे की पैन्सिल अच्छी रहती है। पैन्सिल घड़ने का अच्छा ढंग और बुरा ढंग क्रमशः चित्र ८० और ८१ में दिखाया गया है। पैन्सिल को इतनी पास से भी नहीं पकड़ना चाहिए कि उसका सुरमा भी न दिखाई दे और इतनी दूर से भी न पकड़ना चाहिए कि उस पर नियन्त्रण ही न रहे।

पैन्सिल से टूटी-फूटी तथा कटी हुई रेखाएँ खींचने के बजाय एकदम सीधी रेखाएँ खींचनी चाहिएँ।
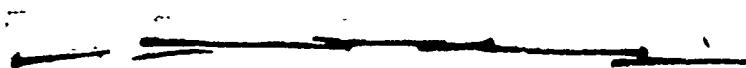
चित्र ८२. विशुद्ध तरीके से खींची गई रेखा.

काग़ज़

ड्राइंग का काग़ज़ कुछ खरखरापन लिये हुए नरम होना चाहिए। अर्थात् एकदम करारा नहीं होना चाहिए। ड्राइंग की कापियों की अपेक्षा अलग काग़ज़ कहीं अधिक सुगमता से प्रयोग किये जा सकते हैं। क्योंकि अलग काग़ज़ पर कापी की तरह चित्र बनाने में अड़चनें नहीं होतीं। हर प्रकार की आयु वाले बच्चे को बड़े-बड़े काग़ज़ देने चाहिएँ, पर वह इतने ही बड़े होने चाहिएँ जितने बड़े उनके बोर्ड और डैस्क पर आसानी से रखे जा सकें। कृतियों तथा चित्रों को क्रमानुसार सँभाल-सँभाल कर रखने की भी आदत उन्हें डाल देनी चाहिए। इसके लिए बच्चों से फाइलें कक्षा में ही बनवाई जा सकती हैं।

रबड़

हमेशा नरम रबड़ ही प्रयोग में लाना चाहिए। पर इसका प्रयोग जहाँ तक हो सके कम ही करना चाहिए ताकि बच्चों को प्रारम्भ में ही सीधी तथा ठीक रेखाएँ बनाने की आदत पड़ जाय।

रंगीन चाक

पानी के रंगों की अपेक्षा रंगीन चाक अधिक आसानी तथा सफ़ाई से काम में लाया जा सकता है। यह नवीन सीखने वालों के लिए बहुत अच्छा रहता है।

ये चाक रंगीन काग़ज़ पर प्रयोग करने चाहिएँ। कागज का रंग चुनते वक़्त जो चित्र बनाना हो उसको ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है। जैसे एक पक्की ईंटों से निर्माणित घर का चित्र बनाने में लाल रंग के काग़ज़ पर सफ़ेद चाक की लकीरें दीवार का प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करने में बहुत ही सहायता करेंगी।
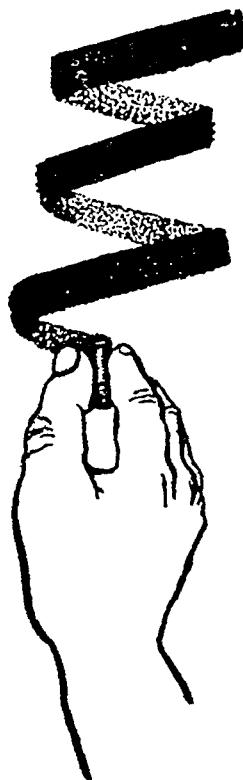
चित्र ८३. चाक को अँगूठे तथा उँगलियों द्वारा इस प्रकार पकड़ना चाहिए कि वह कागज पर पूरे का पूरा घिसा जा सके.

चाक प्रयोग करने के दो तरीके हैं। एक तो पैन्सिल की तरह चित्रादि बनाना, और दूसरा चाक को उँगलियों द्वारा काग़ज़ पर घिसना। इन दोनों तरीकों में निश्चय ही पहला तरीका अच्छा है और इससे एकदम साफ़ तथा सुन्दर चित्र प्राप्त हो सकता है।

पानी के रंगों का डिब्बा

जिस डिब्बे के खानों में रंगों की छोटी-छोटी टिक्कियाँ भरी रहती हैं, वह चित्रकला के लिए अच्छा रहता है। डिब्बे के उन खानों को
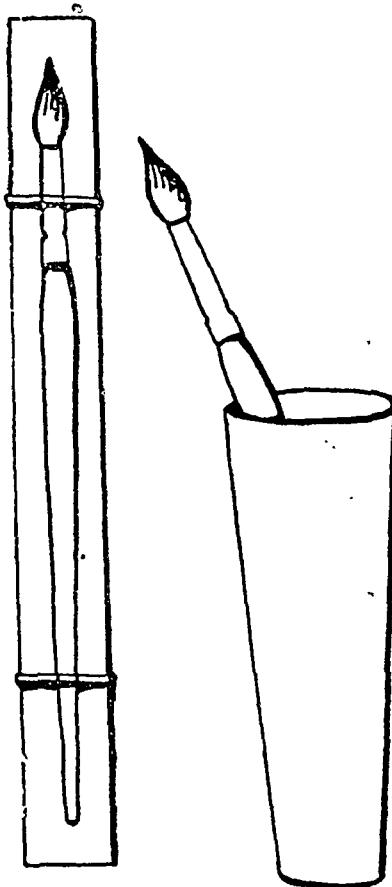
चित्र ८४ और ८५.
तूलिका रखने के दो सुन्दर तथा आवश्यक तरीके.

समय-समय पर ताज़े रंगों से भरते रहना चाहिए। इसके लिए बाज़ार में रंगों की ट्यूब्ज़ मिलती हैं। इसी प्रकार सूखे रंग तथा बने-बनाए रंग भी मिलते हैं। यह साधारण कार्यों के लिए जैसे दीवारों पर चित्र और

डिज़ाइन इत्यादि बनाने के लिए बहुत आकर्षक रहते हैं। सूखे रंगों को पानी तथा गोंद में घोलते हैं।

चित्रकला में यदि हमें अपने बालक को निपुणता प्राप्त करते हुए देखना है तो कला के लिए आवश्यक उपकरणों का उत्तम होना ज़रूरी है। अतः ऐसे ब्रश जिनमें ज़रा भी लचक न हो चित्रकला में उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकते।
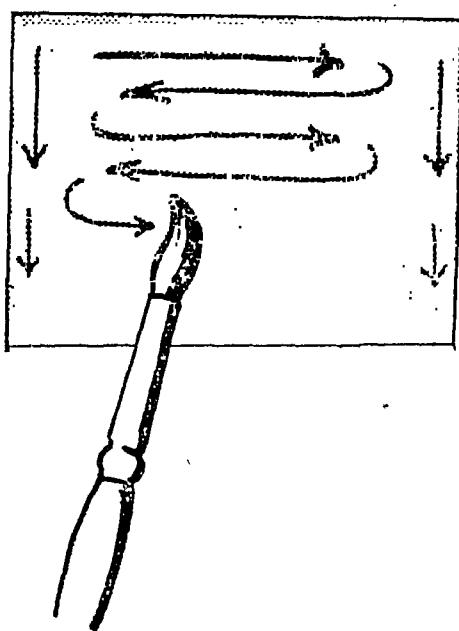
चित्र ८६. रंग भरने की विधि.

चित्र ८६ में किसी स्थान पर, एक-सा रंग किस प्रकार करना चाहिए यह दिखाया गया है। ब्रश में रंग भरकर ऊपर से प्रारम्भ करके बायें से दायें, फिर दायें से बायें धीरे-धीरे रंगना चाहिए। ब्रश को काफ़ी सावधानी से पकड़ना चाहिए तथा रंग से खूब भरा हुआ रखना चाहिए। यदि किसी कोने पर आवश्यकता से अधिक रंग रह जाय तो फिर एक सूखा हुआ ब्रश उस रंग को सोखने के लिए प्रयोग करना चाहिए।

नगरों और गाँवों में मिलने वाली सस्ती चीज़ों का उपयोग

मिट्टी सभी चीज़ों से सस्ती है। यह भारत में सर्वत्र सुलभ है। मिट्टी को पहले कूटकर छान लिया जाता है जिससे उसमें कंकर आदि न रह जायँ। फिर उसे देर तक पानी में भिगो देना चाहिए। मिट्टी को भीग जाने पर अच्छी तरह गूँध लेना चाहिए और उसके लौंदे बना लेने चाहिएँ। यदि मिट्टी अधिक गीली रह जाय तो उसमें सूखी मिट्टी का चूरा मिला दिया जाता है। गूँधी मिट्टी ऐसी तैयार होनी चाहिए कि वह हाथों में न चिपके। मिट्टी जितनी गूँधी जायगी उतनी ही वह अच्छी बन जायगी। इस प्रकार तैयार की गई मिट्टी को गीले बोरे में लपेटकर किसी बर्तन में ढककर रखना चाहिए और समय-समय पर पानी छिड़कते रहना चाहिए। मूर्ति बनाने से बची हुई गीली मिट्टी के टुकड़ों को भी फिर से गीला करके रख लेना चाहिए जिससे कि वे फिर काम में लाए जा सकें।

चित्र ८७. बैल बनाने की विधि.

चित्र दद. घोड़े बनाने की विधि.

मिट्टी की बनी हुई चीज़ों को पकाने से उन पर एक तरह का रंग आ जाता है जिससे वे और भी सुन्दर प्रतीत होने लगती हैं। हमारे देश में कई तरह की मिट्टी मिलती है जो पकाने पर अलग-अलग रंगों म बदल जाती

चित्र ८९. तार द्वारा निर्मित हिरण.
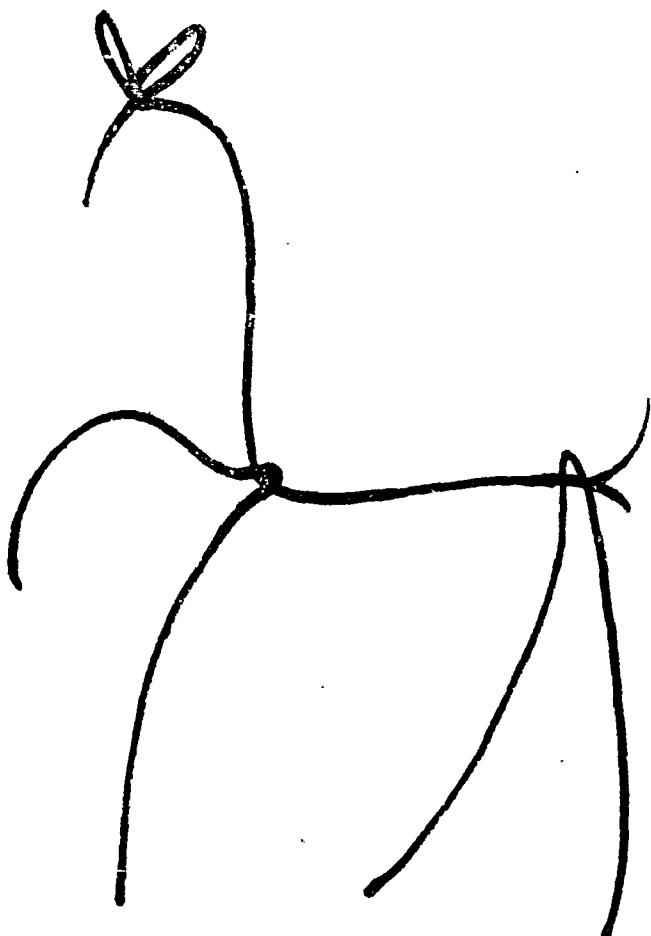
हैं। उनमें कोई लाल, कोई सफ़ेद और कोई काल रंगों की हो जाती है। सिन्ध के दादू ज़िले में एक प्रकार की काली मिट्टी पाई जाती है जो पकने पर सफ़ेद हो जाती है। कलकत्ते की सफ़ेद चाक मिट्टी पकने पर

दूध की भाँति सफ़ेद ही रहती है। साधारणतया और मिट्टियाँ पकने पर लाल रंग की हो जाती हैं।
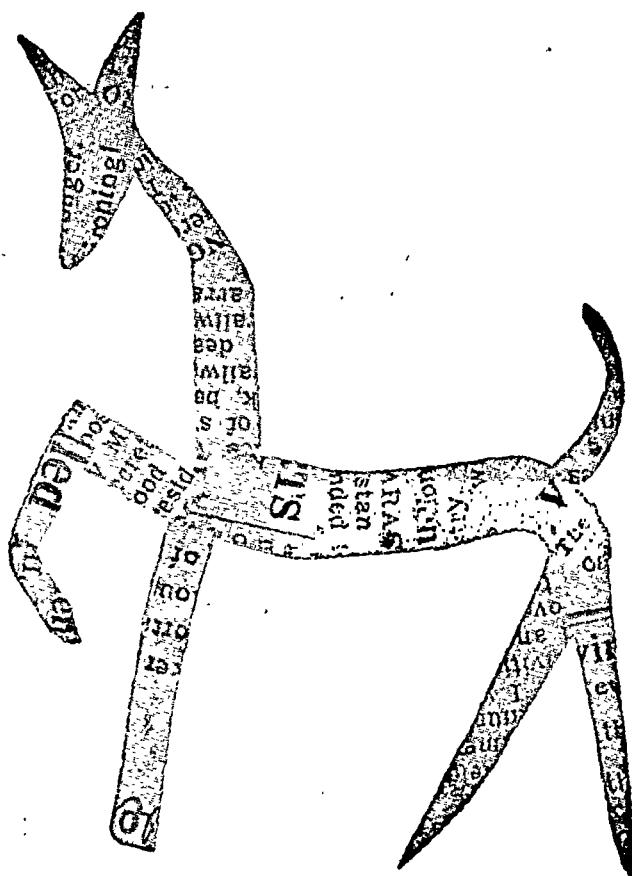
चित्र ६०. तार के ऊपर गीले काग़ज़ लपेटकर बनाया गया हिरण.

मिट्टी की चीज़ें पकाने की व्यवस्था यदि घर या स्कूल में न हो तो कुम्हार की भट्टी में पकवा लेनी चाहिएँ। चित्र ८७ और ८८ में मिट्टी से खिलौने बनाने की विधि बताई गई है।

कागज़ की लुगदी

कागज़ की लुगदी से भी हम अपनी इच्छानुसार कितनी ही तरह की चीज़ें बना सकते हैं। कागज़ की लुगदी बनाने का तरीका यह है कि

चित्र ६१. रंगों द्वारा सुसज्जित हिरण.

रद्दी कागज़ को लेकर पहले उसे एक-दो दिन भिगो देना चाहिए। भीगे हुए कागज़ को निकालकर निचोड़ लेना चाहिए और उसे तब तक

कूटना चाहिए जब तक कि वह अच्छी लुगदी न बन जाय । इस लुगदी में नीचे लिखी किसी भी एक चीज का रस मिलाया जाय । इस रस के मिलने से वह लुगदी आटे की तरह लसदार और मज़बूत बन जायगी ।

किसी भी एक चीज को कूटने और भिगोने के बाद कपड़े में छान करके रस निकाल लेना चाहिए ।

१. मेथी का बीज ।
२. बबूल का गोंद ।
३. इमली के बीज ।
४. उरद की दाल ।

यदि इस बनी हुई लुगदी को कई दिनों तक रखना हो तो उसे गील कपड़े से ढाँककर किसी जस्त की पेटी के भीतर बन्द रखना चाहिए जिससे कि वह सूखने न पाये ।

इस प्रकार की लुगदी से हम कई वस्तुएँ जैसे कटोरे, तश्तरियाँ और छोटे-छोटे खिलौने बना सकते हैं । यदि बड़े खिलौने बनाने हों तो उनके लिए निम्न तरीक़े हैं :

(१) पहले लकड़ी अथवा तार का एक ढाँचा बना लें जैसा कि चित्र ८९ में दिखाया गया है ।

(२) एक भीगे हुए बड़े काग़ज़ पर लेई लगाकर फिर उसका टुकड़ा-टुकड़ा लेकर उस ढांचे पर लपेटना चाहिए । ये टुकड़े तब तक लगाते जाना चाहिए जब तक कि पूरी शक्ल तैयार न हो जाय जैसा कि चित्र ९० में दिखाया गया है ।

(३) सूखने के बाद उसे रंग देना चाहिए । रंग को पक्का और सुरक्षित रखने के लिए उस पर वार्निश अथवा स्प्रिट मिले लाख की पालिश भी कर देनी चाहिए ।
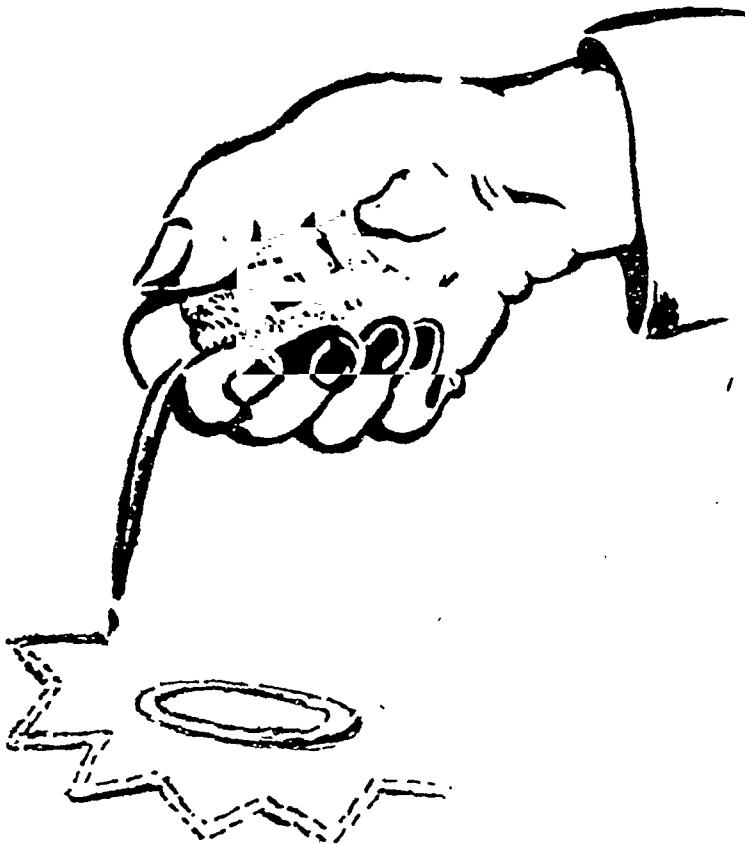
चित्र ६२. हाथ में रेत रखने और उसे गिराने का ढंग.

रेत अथवा रंगीन मिट्टी.

यह एक सस्ती और सरल पद्धति है। विशेषकर बच्चे इसमें अधिक भाग ले सकते हैं। रेत अथवा रंगीन धूल को अपनी हथेली में लेकर बच्चे आसानी से जमीन पर चित्र बना सकते हैं तथा अपने भावों को प्रकट कर सकते हैं।

पत्तियाँ

पत्तियों को गूँथकर हम अपनी कल्पना और रुचि के अनुसार उन्हें कई रूप दे सकते हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण चित्र ९३वें में दिखाया गया है।
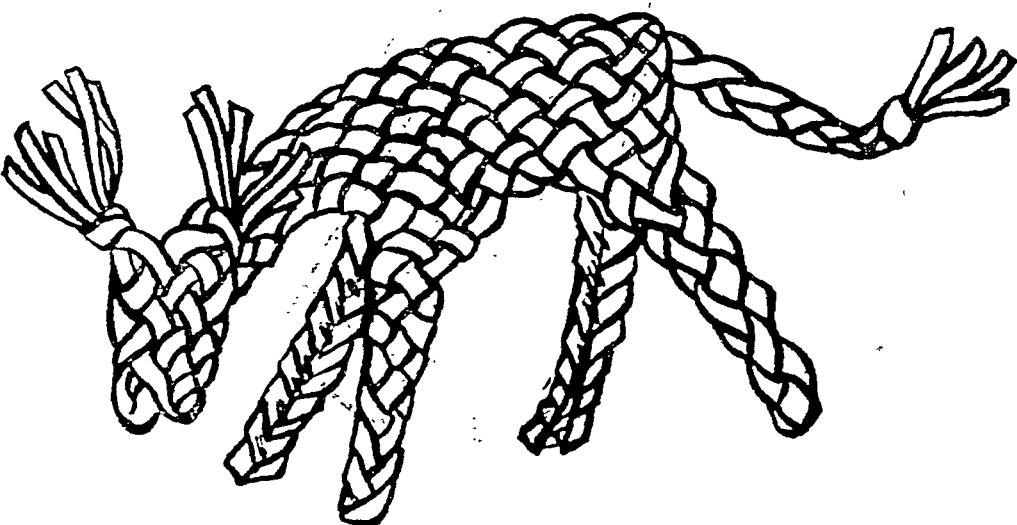
चित्र ९३. गूंथी हुई पत्तियों का हिरण.

कागज़

बढ़िया कागज़ के अभाव में समाचारपत्र को भी चित्र बनाने के काम में लिया जा सकता है। उदाहरणार्थ चित्र ९४ को देखिए।

रेखाएँ बनाओ

पैसा कमाओ

— ६४. विज्ञापन.

रंग

अपने हाथ से रंग बनाने का काम विद्यार्थी के लिए मनोरंजक और शिक्षाप्रद तो होता ही है, साथ ही साथ रंग सस्ता भी पड़ता है । रंग बनाने की तीन विधियाँ नीचे दी गई हैं ।

प्रथम विधि

हर एक सूखे रंग को पानी में पीसकर मिट्टी व चीनी के बर्तन में रखा जाय ! जब रंग का उपयोग करना हो तो उसमें कीकर के गोंद का घोल या सरेस का घोल मिलाया जाय ।

सरेस के घोल बनाने की विधि :

छटाँक भर सरेस को एक सेर पानी में रख दिया जाय । जब सरेस अच्छी प्रकार से पानी में भीग जाय तब उसे आग पर उबालकर उतार लिया जाय ।

रंग को पतला बनाने के लिए घोल प्रचुर मात्रा में उपयोग करना चाहिए । और यदि रंग गाढ़ा बनाना हो तो अल्प मात्रा में ।

दूसरी विधि

सूखे रंगों को पानी में पीसकर ढकनेदार बर्तनों में रक्खा जाय । जब कभी रंगों का उपयोग करना हो तो उनमें अण्डे का घोल भली प्रकार से मिलाया जाय । रंगों को उतनी ही मात्रा में तैयार करना चाहिए जितने रंग की आवश्यकता हो । रंग यदि चित्र बनाने के बाद बच जायँ तो वे दूसरे दिन काम के नहीं रहते कारण कि उनमें कीड़ा पड़ जाता है ।

अण्डे का घोल बनाने की विधि :

अण्डे का घोल इस प्रकार बनाया जाता है—एक अण्डे की ज़र्दी अलग करके एक चाय के चम्मच भर पानी में फेंट लेते हैं ।

खिलौने बनाओ

पैसा कमाओ

चित्र ९४. विज्ञापन.

जहाँ पीतल की परकार नहीं मिलती वहाँ पेंसिल में धागा डालकर चित्र ९५ की विधि से वृत्त खींच सकते हैं।
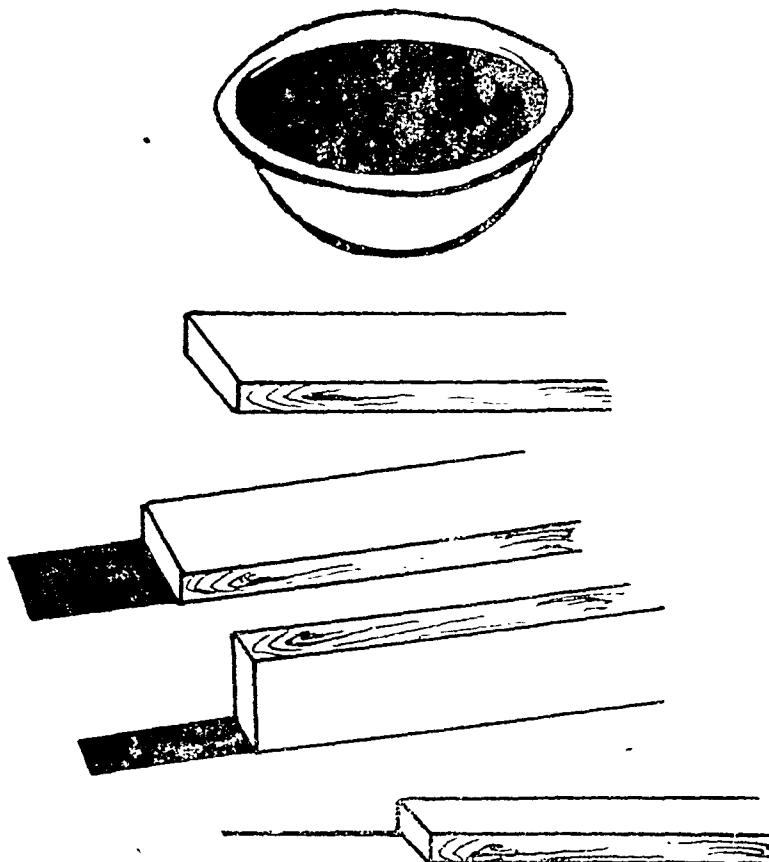
चित्र ९६. काली स्याही का पात्र और लकड़ी के टुकड़े.

चपटी लकड़ी के टुकड़ों से हम अक्षर लिख सकते हैं। इनको भिन्न-भिन्न ढंग से पकड़कर हम इनसे मोटी और पतली रेखाएँ खींच सकते हैं।

तीसरी विधि

ग्लीसरीन १ भाग, अरबिक गोंद ४ भाग, और ट्रेगेकेन्थ गोंद ४ भाग.

उपरोक्त वस्तुओं को सूखे रंग के साथ मिलाकर खरल किया जाय। फिर प्रत्येक खरल किये हुए रंग को ढकनेदार वर्तन में रखा जाय।
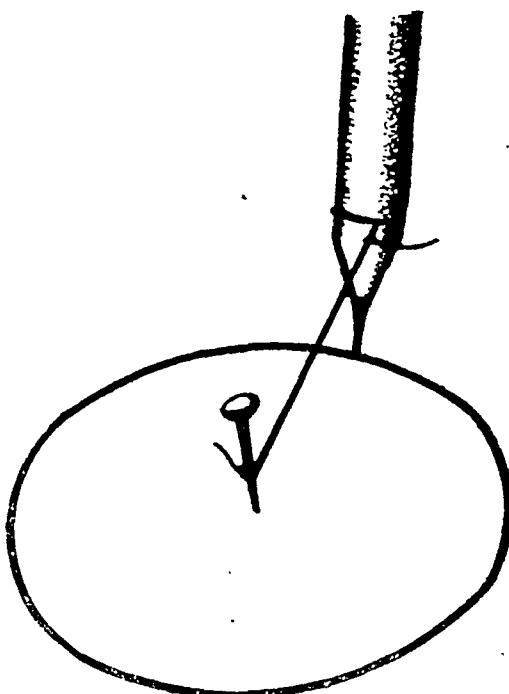
चित्र ९५. धागे की परकार.

इस प्रकार तैयार किये गये रंगों को पारदर्शक रंग कहा जाता है और उन्हें आवश्यकतानुसार थोड़ा या अधिक पानी में मिलाकर उपयोग किया जाताहै ।

स्कूल की इमारत के उत्तर, उत्तर-पूर्व या उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर होना चाहिए। अन्दरूनी कोने के कमरे बिल्कुल ही अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। इस भवन में खूब लम्बी-लम्बी पास-पास मिली-जुली खिड़कियाँ होनी आवश्यक हैं। फ़र्श तथा खिड़की में कम से कम ५ फुट का अन्तर होना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि कमरे में रोशनी एक ही ओर से प्रविष्ट हो।

कला-भवन में बहुत लम्बे-चौड़े ब्लैक बोर्ड की आवश्यकता है जिससे वह पूरी तरह से काम में लाया जा सके। ब्लैक बोर्ड के नीचे लकड़ी की मुड़ी हुई पट्टी लगी हुई होनी चाहिए जिससे चाक का बुरादा फ़र्श पर न गिरे और लकड़ी की पट्टी में इकट्ठा होता जाय।

रंग

कला-भवन में रंग के तीन विविध उपयोग हैं। खुशनुमा वातावरण उत्पन्न करना, नेत्रों को शान्ति प्रदान करना और प्राकृतिक रोशनी को प्रतिबिम्बित करने वाले रंगों का प्रयोग करना। रंग हमार भावनाओं और मानसिक उद्वेगों पर भी गहरा प्रभाव डालता है। अनजाने ही कुछ रंगों को देखकर हमें आन्तरिक सुख प्राप्त होता है, मन प्रसन्न होता है तथा इसमें एक नवीन उत्साह उत्पन्न होता है। लाल, नारंगी तथा पीला रंग हमें गर्म तथा आराम देने वाला प्रतीत होता है। जैसे ही हम इन रंगों की ओर देखते हैं, हमें भिन्न-भिन्न रूप की अनुभूति होती है। पीला रंग थोड़ा गर्म होता है। पर लाल एक दम जलता-सा प्रतीत होता है। नीला रंग शान्ति का सन्देश देता है और चित्त को शान्त बनाता है। और कई रंग हमें उदास चित्त बना देते हैं। उनके देखने से मन और भी उदास होता है। अतः कला-भवन को सजाते समय यह आवश्यक है कि भवन उत्तम रंगों से सुसज्जित हो।

इससे आवश्यक बात जो रंग के लिए ध्यान देने योग्य है वह यह है कि यह कहाँ तक प्राकृतिक रोशनी के लिए सहायक सिद्ध होता है, और साथ ही साथ कमरे को चित्रित करते हुए कहाँ तक उसकी सुन्दरता को

अध्याय १३

कला-भवन

कुछ विद्यालयों में तो कला-विभाग कुछ कमरों से अपनी आवश्यकता पूरी करता है जैसे कला-भवन, शिल्प-कला-भवन, वर्ग-भवन, म्यूज़ियम, प्रदर्शिनी-भवन इत्यादि । परन्तु प्रत्येक विद्यालय में इतनी सुविधाओं का होना तो असम्भव है । अतः शिक्षक को कला-भवन इस प्रकार सजाना चाहिए कि कई प्रकार के कार्यों को पूरा कर सके । कला-भवन का माप इत्यादि कुछ सीमा तक विद्यार्थियों की संख्या पर और उनके कार्य के विशेष उद्देश्यों पर ही निर्भर है ।

ड्राइंग तथा चित्रकला के लिए तंग आयताकार भवन की अपेक्षा प्रायः वर्गाकार भवन ही ठीक रहता है । ३०×२५ फुट का भवन लगभग चालीस विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त है ।

दिन की पर्याप्त रोशनी प्राप्त करने के लिए इस भवन को हमेशा

के लिए सुगमता से प्रयोग कर सकता है । कला-भवन सारे स्कूल के बच्चों के लिए है, अतः यहाँ भिन्न-भिन्न लम्बाई के स्टूल होने चाहिएँ।

सजावट

बहुत अधिक चित्रों से भरी हुई दीवार मन पर एसा प्रभाव डालती है जैसा कि बहुत अधिक फर्नीचर से भरा कमरा जिसमें
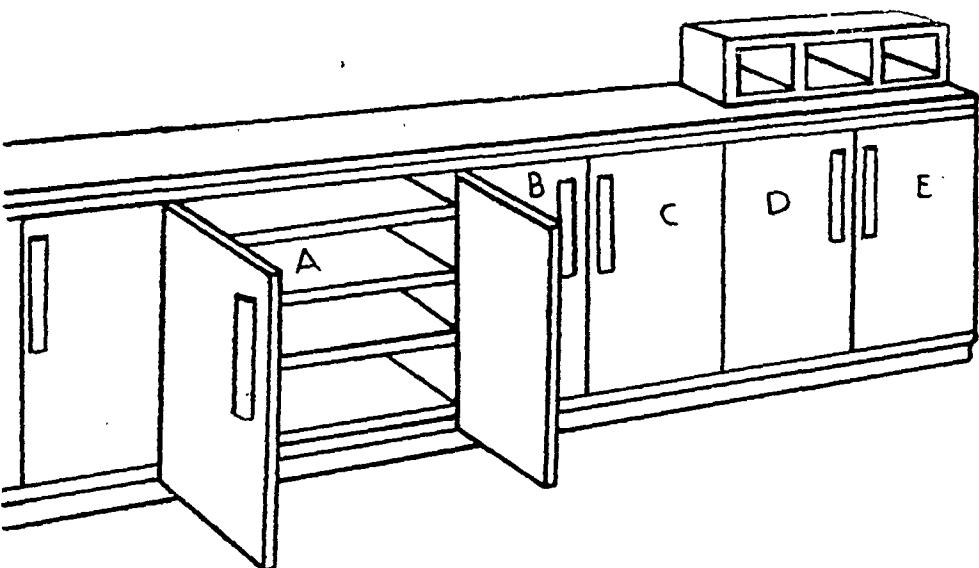
चित्र ९७ कैबिनेट.

चलने-फिरने की भी सुविधा न हो । बहुत अधिक सजावट से तो बिना किसी चित्र वाली दीवार भी सुन्दर दिखाई देती है । ठीक प्रकार से खाली छोड़े हुए स्थान का महत्त्व बच्चों को स्पष्ट करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि बहुत थोड़े चित्र एक बार में लगाय जाय । यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये चित्र वास्तव में सुन्दर होने चाहिए और

बढ़ाता है और कहाँ तक अन्य भित्ति चित्रों के लिए उपयुक्त है । जिन कमरों में सूर्य की रोशनी अधिकता से आती है उनमें ठंडे रंगोंकी आवश्यकता है। इसके विपरीत ठंडे कमरों को गर्म रंगों से सजाना ही कमरे को सुन्दर बनाना है। रंग चुनते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कमरा किस समय अधिक प्रयोग में लाया जाता है।

कमरे के परिमाण पर भी रंगों का प्रभाव पड़ता है। दीवारों व छत में हल्के-हल्के रंगों द्वारा सुसज्जित कमरा बड़ा-बड़ा-सा लगता है। गहरे रंग दीवारों को जुड़ा-सा बना देते हैं और कमरा छोटा-छोटा लगने लगता है।

फर्नीचर

कार्य में सुगमता के लिए निम्न फर्नीचर की आवश्यकता है— विविध वस्तुओं को रखने के लिए एक कैबिनेट, प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक डैस्क और एक स्टूल।

चित्र ९७ में कैबिनेट का नमूना दिखाया गया है। इसके बीच का भाग A बड़े कागजों के लिए उपयुक्त है। इसका वास्तविक माप ३४ × ३६ इंच है। उसके साथ वाल भाग रग और ड्राइंग बोर्ड रखने के लिए हैं। सभी दराज कबिनेट में से बाहर निकाले जा सकते हैं। दराज को कार्य प्रारम्भ करने से पहले मेज़ पर रखा जा सकता है, जिससे बच्चे अपने-अपने रंगों के डिब्बे निकाल लें तथा कार्य के अन्त में वापिस उन्हें उसी में रख सकें। दराज को फिर कैबिनेट में रखा जा सकता है।

क चिन्ह द्वारा प्रदर्शित स्थल किताबों, मासिक पत्रों वा अन्य ज्ञान प्राप्त करने योग्य वस्तुओं के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

कैबिनेट का माप वस्तुओंकी अधिकता व आवश्यकता पर निर्भर है।

ढलावदार ढकने वाले डैस्क ड्राइंग और चित्रकला के लिए बहुत उत्तम है । ढकने को दूसरी ओर काला रंगने से वह ढकना श्याम-पट का भी काम दे सकता है। प्रत्येक बालक इसे मौखिक हिसाब आदि लगाने

अध्याय १४

कक्षाओं में छात्र-संख्या और समय

हम पहले यह देख चुके हैं कि उत्तम कोटि के कला-शिक्षण के लिए शिक्षक को न केवल सामूहिक रूप में शिक्षा देनी चाहिए वरन् प्रत्येक बालक की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। अतः कक्षा में छात्र-संख्या बहुत थोड़ी होनी चाहिए। विशेषतः सैकिण्डरी कक्षाओं में तो छात्र-संख्या हमेशा ही नियमित होनी चाहिए। ऐसा होने पर ही शिक्षक छात्रों को भली प्रकार समझ सकेगा तथा उन्हें उन्नति की ओर अग्रसर कर सकेगा। छात्र भी थोड़ी संख्या में होने पर कार्य में अधिक उत्साह प्रदर्शित करते हैं। अन्यथा बहुत छात्रों के बीच प्रायः छात्र उदासीन हो जाते हैं और कभी-कभी तो कार्य में निपुण न होने के कारण शिक्षक का ध्यान कक्षा में नित नये उपद्रव मचाकर अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत यदि छात्रों की संख्या थोड़ी हो तो

इन्हें समय-समय पर एकदम हटाकर फिर नयें सिरे से नई योजना के अनुसार सजाना काफ़ी अच्छा रहता है।

हमार प्रतिदिन के वातावरण से सम्बन्धित वस्तुओं के उत्तम से उत्तम चित्र लगाना और फिर बच्चों को उन पर सुझाव देने के लिए उत्सुक करना बच्चों को वातावरण के प्रति सजग बना देता है। इससे बच्चे कला का प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्ध जोड़ने में सफल हो सकते हैं। कला-भवन की आवश्यक वस्तुओं को सजाने में भी बच्चों को अधिक से अधिक भाग लेने देना चाहिए। फूलों, चित्रों, उपकरणों इत्यादि का क्रमानुसार सजाना कला को व्यवहारिक परीक्षण के समान समझना चाहिए। केवल कला-शिक्षण पर दिये गये भाषणों की अपेक्षा यह व्यवहारिक ज्ञान कहीं अधिक मूल्यवान तथा शिक्षाप्रद सिद्ध होता है।

अध्याय १५

नागरिक और ग्रामीण स्कूलों का पाठ्यक्रम

नगरों और ग्रामों के अंचल में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार वहाँ के स्कूलों के पाठ्यक्रम भी भिन्न-भिन्न होने चाहिएँ। उदाहरण के लिए नागरिक स्कूलों में यांत्रिक और औद्योगिक रूपों के अध्ययन पर विशेष जोर देना अच्छा होगा जब कि ग्रामीण स्कूलों में प्राकृतिक रूपांकन को श्रेय देना उचित होगा।

छात्र शिक्षक को अपना मित्र समझने लगते हैं और उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। यदि छात्रों की संख्या अधिक ही हो तो शिक्षक को चाहिए कि उन्हें भिन्न-भिन्न समूहों में बाँट दे। इससे उसका कार्य सरल हो जायगा और वह कार्य का अच्छी तरह निरीक्षण कर सकेगा। बच्चों को भी इससे मिल-जुल कर कार्य करने की आदत पड़ जाती है और वह एक दूसरे के सुझावों का प्रयोग करना भी सीख जाते हैं।

समय

कला में निपुण होना बहुत ही कठिन काम है। अन्य विषयों में बच्चे रटकर, किताबों को पढ़कर आगे उन्नति कर सकते हैं पर कला तो हस्तकौशल पर निर्भर है। जितना ही अधिक काम बच्चे अपने हाथ से करेंगे उतना ही अधिक सीखेंगे। अतः कम से कम एक सप्ताह में कला-शिक्षण के लिए तीन पीरियड ३० से ४० मिनट तक होने बहुत ही आवश्यक हैं।

उच्च श्रेणियों में काम भी उच्च कोटि का होता है अतः एक समय में एक पीरियड से अधिक की ही आवश्यकता होगी। और जिन छात्रों ने मैकेनिकल ड्राइंग विषय चुना हो उनके लिए तो विशेष पीरियड होने ही चाहिएँ।

अध्याय १५

नागरिक और ग्रामीण स्कूलों का पाठ्यक्रम

नगरों और ग्रामों के अंचल में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार वहाँ के स्कूलों के पाठ्यक्रम भी भिन्न-भिन्न होने चाहिएँ। उदाहरण के लिए नागरिक स्कूलों में यांत्रिक और औद्योगिक रूपों के अध्ययन पर विशेष ज़ोर देना अच्छा होगा जब कि ग्रामीण स्कूलों में प्राकृतिक रूपांकन को श्रेय देना उचित होगा।

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
१ और	काल्पनिक चित्रकारी—	अपनी इच्छानुसार चित्र बनाना।	पुराने अख़बारों के काग़ज़, रंगीन काग़ज।
२	रंग—	इन्द्र-धनुष के रंग। मौलिक रंगों से भिन्न-भिन्न रंग बनाना।	रंगीन चाक, रंगीन पेन्सिलें, प्याला, खजूर या बाँस की कूची, स्लेट, मिट्टी, प्लास्टसीन, चाकू और कैंची इत्यादि।
	सजावट—	पुस्तक, वस्त्र और बर्तन आदि का अपने-अपने स्थान पर रखना।	
	मूर्तिकला—	अपनी इच्छानुसार गोलाकार तथा समतल वस्तुओं का बनाना।	

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
३ और ४	चित्रकारी—	अपनी इच्छानुसार दैनिक जीवन की घटनाओं व दृश्यों के चित्र बनाना ।	जैसा कक्षा १ और २ में दिया हुआ है ।
	रंग—	रंगों का बल । रंगों का घनत्व ।	
	सजावट—	दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को नियमित ढंग से सजाना ।	
	मूर्तिकला—	दैनिक व्यवहार की वस्तुओं का बनाना ।	

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
५ और ६	चित्रकारी—	अपनी इच्छानुसार चित्र बनाना। घर व स्कूल के बाहर के दृश्यों के चित्र बनाना।	
	रंग—	सम्बन्धित रंग। पूरक रंग।	
	सजावट—	वस्तुओं को चुनकर सुसज्जित करने के सुझाव एकत्र करना। फिर सुझाव के अनुसार सजाना।	सफेद कागज़, रंगीन कागज़, ब्रुश, साबुन। शेष सामग्री जैसी कक्षा १ और २ में बताई गई है।
	मूर्तिकला—	दैनिक व्यवहार की वस्तुओं, घर, स्कूल, वृक्ष, जीव-जन्तुओं का बनाना। मिट्टी के अतिरिक्त साबुन या लकड़ी को खुरचकर वस्तुएँ बनाना।	
	माप-चित्र—	सरल आकार की वस्तुओं के माप-चित्र बनाना जिनके द्वारा वस्तुओं की वास्तविक लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई का ज्ञान हो।	ज्यामितिक यन्त्र।

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
७ और ८	चित्रकारी—	घर व स्कूल के बाहर के दृश्यों व दैनिक जीवन की घटनाओं के चित्र बनाना । पाठ्य-पुस्तकों में से पढ़ी हुई कहानियों के चित्र बनाना ।	जैसा कक्षा ५ और ६ में दिया हुआ है ।
	रंग—	सम्बन्धित पूरक रंग । रंग-त्रितय ।	
	सजावट—	वस्तुओं को चुनकर सुसज्जित करने के लिए सुझाव एकत्र करना । फिर सुझाव के अनुसार सजाना ।	
	मूर्त्तिकला—	दैनिक जीवन की घटनाओं या वस्तुओं का बनाना । घर और बग़ीचा आदि का बनाना । मिट्टी के अतिरिक्त साबुन, पत्थर या लकड़ी को खुरचकर वस्तुएँ बनाना ।	
	माप-चित्र—	सरल आकार वाली वस्तुओं के माप-चित्र बनाना जिनके द्वारा वस्तुओं की वास्तविक लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई का ज्ञान हो ।	ज्यामितिक यन्त्र ।

ग्रामीण स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
१ और २	काल्पनिक चित्रकारी—	बच्चे अपनी इच्छानुसार चित्र बनाएँ। इन कक्षाओं में चित्र बनाने की पद्धति या रंग का व्यवहार करने की पद्धति नहीं बतानी चाहिए। इससे नन्हें बच्चों के मानसिक विकास और आत्मविश्वास पर बाधा पहुँचती है।	अखबारों के कागज़, बादामी काग़ज़, कपड़े रंगने के रंग, गेरु, खड़िया, काजल, गोंद इत्यादि। रंगीन चाक, धागा, प्याला, ब्रुश या बाँस की कूची, स्लेट, कैंची और कुम्हार की मिट्टी।
	रंग—	इन्द्र-धनुष के रंग। मौलिक रंगों से भिन्न-भिन्न रंग बनाना।	
	मूर्त्तिकला—	अपनी इच्छानुसार गोलाकार और सरल आकार वाली वस्तुओं का बनाना।	
	सजावट—	अपने व्यवहार में लानेवाली वस्तुओं को साफ़ रखना और उन वस्तुओं को अपने-अपने नियमित स्थान पर सजाना।	

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
३ और ४	काल्पनिक चित्रकारी—	बच्चे जो कुछ कहना चाहते हैं वह वे चित्रों द्वारा प्रकट करें। बच्चे अपनी इच्छानुसार दैनिक जीवन की घटनाओं के चित्र बनाएँ।	जैसा कक्षा १ और २ में बताया गया है।
		बच्चों को चित्रों की नकल न करने देना चाहिए। क्योंकि नकल करने की क्रिया उनके रचनात्मक विकास को खत्म कर देती है।	
	रंग—	रंगों का बल। रंगों का घनत्व।	
	मूर्तिकला—	दैनिक व्यवहार की वस्तुओं का बनाना। दैनिक जीवन की घटनाओं और दृश्यों का बनाना।	
	सजावट—	दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को साफ़ रखना और उनको नियमित ढंग से सजाना।	

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
५ और ६	चित्रकारी—	दैनिक जीवन की घटनाओं और दृश्यों के चित्र बनाना । सुनी हुई या पढ़ी हुई कथा-कहानियों के चित्र बनाना । सरल आकार की प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत वस्तुओं के चित्र बनाना ।	जैसा कक्षा १ और २ में दिया हुआ है ।
	रंग—	सम्बन्धित रंग । पूरक रंग ।	
	मूर्त्तिकला—	मकान व स्कूल बनाना । जीव-जन्तुओं के चित्र बनाना ।	
	सजावट—	वस्तुओं को चुनकर सुसज्जित करने के सुझाव एकत्र करना । फिर सुझाव के अनुसार सजाना ।	

कक्षा	विषय	अभ्यास	सामग्री
७ और ८	चित्रकारी—	दैनिक जीवन और प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाना । सुनी हुई या पढ़ी हुई कथा-कहानियों के चित्र बनाना ।	जैसा कक्षा १ और २ में दिया हुआ है ।
	रंग—	सम्बन्धित रंग । रंग-त्रितय ।	
	मूर्त्तिकला—	मकान व बग़ीचा बनाना । दैनिक घटनाओं और प्राकृतिक दृश्यों का बनाना ।	
	सजावट—	वस्तुओं को चुनकर सुसज्जित करने के लिए सुझाव एकत्र करना और फिर सुझाव के अनुसार सजाना । बधाई-पत्र बनाना । उत्सवों पर घर व स्कूल को सजाना ।	

अध्याय १६

भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास

भारत की चित्रकला उतनी ही प्राचीन है जितना कि यहाँ का साहित्य। महाभारत काल के एक आख्यान से ज्ञात होता है कि उस समय के कलाकार इतने प्रतिभासम्पन्न होते थे कि वे अपनी स्मृति से ही किसी व्यक्तिविशेष की प्रतिकृति अंकित कर सकते थे। उषा नाम की एक राजकन्या ने एक दिन स्वप्न में अपने साथ एक सुन्दर राजकुमार को संचरण करते देखा। उसने उसके मनोहर रूप का वर्णन अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा से किया। चित्रलेखा एक कुशल चित्रकर्त्री थी। उसने अपनी स्मृति से उस समय के प्रायः सभी राजकुमारों की प्रतिकृतियाँ अंकित कर उषा के सम्मुख रखीं। उन चित्रों में उषा का अभि-लषित राजकुमार कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का चित्र भी था। इस प्रकार उषा की उत्कंठा का समाधान चित्रलेखा की कला-निपुणता से हुआ। कालिदास

के मालविकाग्निमित्र नाटक में बताया गया है कि अग्निमित्र ने एक चित्र को देखा जो धूप में सूखने को रखा गया था। उस चित्र में कई नारी-आकृतियाँ अंकित थीं। अग्निमित्र की दृष्टि एक सुन्दर नारी-आकृति पर पड़ी जिस पर वह मुग्ध हो गया। वह मालविका की प्रतिकृति थी। इस प्रकार मालविका में उसका प्रेम हुआ और अन्त में उससे उसने विवाह कर लिया। मेघदूत में विरही यक्ष रामगिरि को चूड़ा पर गेरू से अपनी प्रेयसी की प्रतिकृति चित्रित करता हुआ बताया गया है। सातवीं शताब्दी के महाकवि बाण ने भी उज्जैन के भित्ति-चित्रों का उल्लेख किया है जिनमें देव, राक्षस, सिद्ध, गंधर्व, नाग आदिकों का मनोहर अंकन किया गया था। आठवीं शताब्दी के महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित में भित्ति-चित्रों का उल्लेख किया है, जिसमें रामायण की घटनाओं का चित्रण हुआ था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भित्ति-चित्र के लिए उपयुक्त धरातल और भिन्न-भिन्न रंगों के निर्माण की पूरी विधियाँ बताई गई हैं।

आरम्भिक भित्ति-चित्र

मध्य एशिया से प्राप्त प्रागैतिहासिक काल के चित्रों को छोड़कर प्रथम-द्वितीय ईस्वी पूर्व के भारतीय चित्र हमें अजन्ता की गुफा नं० ९ और १० में मिलते हैं। इन चित्रों की आकृतियाँ भरहूत और सांची के चित्रों से मिलती-जुलती हैं। मध्यप्रदेश के जोगीमारा गुफा के चित्र विदसा के चैतगृह के चित्रित स्तंभों के ही समकालीन प्रतीत होते हैं।

परवर्ती भित्ति-चित्र

भारतीय चित्रकला का द्वितीय उत्थान गुप्त काल में होता है। इसी काल में अजन्ता, बाघ, सित्तनवासन आदि गुफाओं में भित्ति-चित्र निर्मित हुए। इनका समय ईस्वी ५वीं शताब्दी तक है। चित्रों के विषय अधिकतर भगवान् बुद्ध और बोधिसत्व तथा जातक कथाओं पर आधारित हैं। गुप्त काल के संयम, औदात्य और आध्यात्मिकता का दर्शन हम गुफा

चित्र ६८. माता और शिशु (अजन्ता).
(आर्कोलोजी डिपार्टमैण्ट, हैदराबाद, के सौजन्य से प्राप्त)

नं. १ में बोधिसत्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर के चित्र में पाते हैं। गुफा नं. १६ में मरती हुई राजकन्या का एक मार्मिक चित्र है। कला के इतिहास में यह करुणा और भावुकता की चरम अभिव्यक्ति है। गुफा नं १७ की माता और शिशु (चित्र ६८), जिसमें यशोधरा अपने पुत्र राहुल को भगवान् बुद्ध को भेंट करती हुई दिखाई गई है, अजन्ता के सुन्दरतम् चित्रों में से है। अजन्ता के शत-शत स्तम्भों, दीवारों और कक्षों में कलाकारों ने स्वर्ग उतारकर रख दिया है। यहाँ आकर, हम एक सौन्दर्य-देश में खो जाते हैं। हमारी आँखों के सामने शान्त वन, कुसुमित उद्यान, राजप्रासाद और नगर, उन्मुक्त भूमि और गहन अरण्य की विविध पृष्ठभूमियों पर सुन्दर राजकुमार, तपस्वी, वीर और नाना गुण स्वभाव के नारी-पुरुष उपस्थित होते हैं। हमें यहाँ स्वर्ग के सन्देश वहन करने वाले गगनचारी गंधर्वों के दर्शन भी होते हैं।

अजन्ता के चित्रों में अंकित नारी-पुरुषों के मुख पर इस धरती का प्रफुल्ल जीवन मुस्करा रहा है। पशु-पक्षियों में सौन्दर्य और शक्ति मुखर हो रही है। पुरुषों और पुष्पों से पवित्रता की सुरभि फैल रही है। यहाँ जैसे विश्व के सूक्ष्म आध्यात्मिक सत्य अपने स्थूल सौन्दर्य के वैभव में भास्वर हो उठे हैं। अजन्ता के भित्ति-चित्र हमारी दृष्टि को ही परितृप्त नहीं करते बल्कि उस कलात्मक अभिव्यक्ति के उन तत्वों का निदर्शन कराते हैं जो केवल मस्तिष्क ही नहीं हमारी अन्तस्चेतना को भी स्पर्श करने वाले हैं। इन चित्रों में अक्षय आनन्द विश्राम कर रहा है। यह सौन्दर्य का वह स्वप्न देश है जिसे पृथ्वी के कला-साधकों ने अचल शैल मन्दिरों में बन्दी बना दिया है।

अजन्ता के भिक्षु कलाकारों के लिए सौन्दर्य और जीवन दोनों ही समान रूप से अखंड थे। उनके समक्ष शारीरिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य की दूरी विलुप्त हो चुकी थी नारी के प्रति सहानुभूति और श्रद्धा अजन्ता से बढ़कर कहीं और भी समर्पित की गई है, कहा नहीं जा सकता।

वास्तविकता की परधि के भीतर भी हम यहाँ नारी का दर्शन एक व्यापक आदर्श के रूप में करते हैं। यहाँ वह केवल नारी मात्र ही नहीं है प्रत्युत वह विश्व के निखरे सौन्दर्य का प्रतीक है।

पं० जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं, "जब से अजन्ता के भित्ति-चित्रों का पता चला है हमारे विचारों पर, विशेषकर भारतीय कला पर, उनका

चित्र ६६. अजन्ता की एक नारी आकृति.

गहरा प्रभाव पड़ा है। उनसे न केवल १,५०० वर्ष पूर्व की कला-परम्परा ही सम्मुख आती है प्रत्युत उनमें उस युग का जीवन ही भास्मान हो उठता है। इतिहास यहाँ पुरातन युग के एक जड़ इतिहास के रूप में नहीं बल्कि वह जीवन्त मानवता की गरिमा से दीप्त है। अजन्ता न केवल

कलाकारों और विशेषज्ञों को ही आकर्षित करती है प्रत्युत वह प्रत्येक भावुक दृश्य का एक स्वप्न है।"

इसी प्रकार बाहगूहा के चित्र निपुण कलाकारों की कला-दक्षिता प्रगट करते हैं। जो दृश्य बच रहे हैं उनमें एक नृत्य-चित्र जिसमें एक पुरुष द्वारा संचालित एक नारी-समूह का चित्रण हुआ है, बहुत ही सुन्दर है।

९वीं शताब्दी के ट्रावनकोर के गुहा-मंदिर थिरूनंदिकारा के भित्ति-चित्र अजन्ता के चित्रों से मिलते-जुलते हैं। प्रथम शताब्दी से लेकर ७वीं शताब्दी तक कलाकारों और भिक्षुओं के दल के दल भारत से बाहर विदेशों में जाते रहे। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने कला को एक साधन बनाया। विभिन्न देशों के बीच कला की भाषा एक प्रकृत माध्यम सिद्ध हुई। लेखबद्ध भाषा और भाषण द्वारा जो कार्य नहीं हो सकता था वह कला द्वारा सुलभ हुआ। भारतीय कला का प्रभाव विदेशों में भी पड़ा जिसका प्रमाण अफ़ग़ानिस्तानवासियों के भित्ति-चित्रों फाँडुकिस्तान के बौद्ध मठ के चित्रों तथा सिजरिया, लंका के चित्रों को देखने से मिलता है।

मध्यकालीन भित्ति-चित्र

एलोरा के कैलाश मन्दिर में, जो प्रायः ८वीं शताब्दी में निर्मित हु[illegible] हैं, भित्ति-चित्रों के नमूने मिलते हैं। इनकी दो परतों से ज्ञात होता है कि पहली परत मन्दिर के निर्माण के समय की है और दूसरी परत सम्भवतः एक शताब्दी बाद की। पल्लव काल के चित्रों के अवशेष सित्तनवासन के जैन गुहा मन्दिर तथा कांजीवरम् में मिलते हैं। पुनः लगभग ११वीं शती के आरम्भ में राजराजा महान् के काल में निर्मित वृहदेश्वर मंदिर तंजौर के चित्र मिलते हैं। दक्षिण के मंदिरों में भित्ति-चित्रों की एक क्रमबद्ध परम्परा सुरक्षित मिलती है। अनन्तपुर ज़िले के लैपाक्षी मन्दिर तथा चितूर के विष्णु मन्दिर में इनके दर्शन होते हैं। उत्तर भारत की

चित्रकला की परम्परा झाँसी जिले के मदनपुर मन्दिर में देखी जा सकती है जिसमें हम पश्चिमी भारत की शैली में अतिरंजित आकृतियाँ और उभरी हुई आँखों का चित्रण पाते हैं ।

पाल शैली

बंगाल का पाल स्कूल, जिसका समय १०वीं शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक माना जा सकता है, पुस्तकों के अलंकार के रूप में विकसित हुआ । पाल शैली के सर्वोत्तम चित्र प्रज्ञापारमिता के बौद्ध ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं, जिनके आरम्भिक उदाहरण पाल राजा महेन्द्रपाल ८९४ तथा रामपाल देव १०९३ के समय के मिलते हैं । इस कला की विशेषता रेखांकन, दबे हुए रंग और सीधी-सादी रचना में है ।

गुजरात स्कूल

पश्चिमी भारत के गुजरात स्कूल में भी छोटे-छोटे चित्र-निर्माण की कला विकसित हुई । इस कला का अस्तित्व ११वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक रहा । इस कला द्वारा जैन-ग्रंथों का चित्रण और अलंकरण प्रभूत रूप में हुआ । गुजरात स्कूल के चित्रों के विषय प्राय: तीन भागों में विभक्त मिलते हैं । प्रथम में हम जैन का चित्रण पाते हैं, द्वितीय में वैष्णव धर्म, गीत गोविन्द, भागवत आदि के चित्र पाते हैं और तृतीय में प्रेम सम्बन्धी चित्र पाते हैं ।

आरम्भिक जैन ग्रंथ ताड़-पत्रों पर लिखे मिलते हैं और पीछे के ग्रंथ काग़ज़ों पर । जहाँ गेरू सरीखा लाल रंग पहले के ग्रंथों में बहुतायत से प्रयोग में लाया गया है वहाँ १५वीं शताब्दी के बाद के ग्रंथों में नील और स्वर्ण का प्रयोग किया गया है । इन चित्रों की सर्वोपरि विशेषता तीन-चौथाई अंश की कोणदार मुखाकृति, नुकीली नासिका, मुखाकृति की रेखा को अतिक्रमण करती आँखें और अलंकारों की बहुलता है । थल-चित्रों में मानसिक कल्पना और विवर्ण रंगों की योजना मिलती है । इन सब बातों के होते हुए भी गुजरात शैली के चित्रों की रेखाओं में एक

अपना लालित्य है और वह मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति के परिज्ञान के लिए एक आवश्यक सूत्र उपस्थित करती है।

मुग़ल शैली

प्रारम्भ के मुग़ल सम्राट् बाबर और हूमायूँ कला और प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े उपासक थे। किन्तु कला की प्रगति के लिए वे कुछ कर सकते, इसके लिए उनके पास उपयुक्त समय का अभाव था। सम्राट् अकबर के राज्यारोहण के पश्चात् (१५५६-१६०५) शासन-प्रणाली में कला और स्थापत्य में एक प्रगति और विकास लक्षित हुआ। अकबर चित्रों का बड़ा मार्मिक प्रेमी था और कहा जाता है कि बचपन में उसने स्वयं चित्रकला की शिक्षा ली थी। चित्रकला और चित्रकारों के विकास के लिए उसने पारसी चित्रकारों की देख-रेख में एक चित्रशाला का स्थापना की था। भारतीय चित्रकार पारसी चित्रकारों से अपनी कला की शैली ग्रहण करते थे। उस चित्रशाला के प्रति सम्राट् अकबर की इतनी रुचि थी कि वह प्रति सप्ताह स्वयं चित्रशाला के कार्यों की प्रगति का निरीक्षण करता था और योग्य चित्रकारों को पुरस्कृत करता था। अकबर की चित्रशाला में दूर-दूर प्रान्तों जैसे गुजरात, राजपूताना, काश्मीर के चित्रकार एकत्र किये गये थे। वे पारसी ग्रंथों, महाकाव्यों तथा अन्य संस्कृत से अनूदित पुस्तकों को चित्रित करते थे। इनमें तिमूर के महल का इतिहास है जो आज भी पटना के संग्रहालय में सुरक्षित है। महाभारत जो राजनामा के नाम से १६९ चित्रों सहित जयपुर में सुरक्षित है। हमराजनामा जो बादशाह की प्रिय कहानियों का संग्रह है, इसमें कपड़ों पर बने १,६७५ चित्र हैं। इन चित्रों में अब केवल १०० चित्र ही बच रहे हैं और भारत में तो केवल ४ ही रह गये हैं। रामायण और अकबरनामा भी, जिसमें अबुलफज़ल द्वारा अकबर की जीवनी लिखी गई है, इसी प्रकार के चित्रित ग्रंथ हैं।

अकबरकालीन चित्रों की विशेषता की परख उनमें अंकित बहुविध कार्यशीलता और आकृति की शक्तिशाली रेखाओं से हो सकता है। परन्तु पुरानी भारतीय परम्परा और सिद्धान्तों का अभाव है। इस पर भी उन्हें अपना लिया गया है और वह सजीव और सुचारु हैं।

मुग़लकालीन चित्रकला जहांगीर के राजस्व काल (१६०२-१६२७) में अपने चरम उत्कर्ष में पहुँची। जहांगीर ने चित्रों के प्रति प्रेम और रुचि अपने पिता से प्राप्त की थी। वह प्रकृति का बड़ा प्रेमी था। उसकी सुन्दर जीवनी में हमें प्राकृतिक सौन्दर्य और पशु-पक्षियों का सुरुचिपूर्ण वर्णन पढ़ने को मिलता है।

अपने पिता के समान ही वह स्वयं भी चित्रकारों को प्रोत्साहित करता था। उन्हें चित्र बनाने के लिए प्रेरणा देता था, उनकी कृतियों की आलोचना करता था और उन्हें पुरस्कृत करता था। उसकी बेगम नूरजहां स्वयं एक मौलिक चित्रकर्त्री थी और उसने कपड़ों की आकारिक तरहों की एक नई शैली को जन्म दिया। जहांगीर-काल के चित्रों का सर्वोत्तम नमूना जहांगीर का अपना चित्रों का एल्बम है। इसका अंग्रेजी संस्करण केगान पाल, ट्रेन्च, टलैनर एण्ड कम्पनी के द्वारा १९२५ में प्रकाशित हुआ था। इसमें पर्शिया के शाह द्वारा इस्माइल प्रथम के कुछ छोटे-छोटे चित्र हैं। दूसरे कुछ हैरात के सुल्तान हुसैन बेकार के चित्र हैं। अफ़ग़ानिस्तान के पर्वतों के चित्र, हुमायूँ के राजस्व काल की काम्बे की खाड़ी के चित्र, अकबरकालीन चित्रकारों द्वारा अंकित राजस्थान के सन्तों के चित्र, मशहूर चित्रकार मंसूर द्वारा अंकित पक्षी समूह, हिन्द तपस्वियों के चित्र, इटली और पुर्तगाली के धार्मिक चित्रों की प्रतिकृतियाँ भी इस संग्रह में हैं। राजदरबार से सम्बन्धित अनेक व्यक्तियों की प्रतिकृतियाँ भी इसमें हैं जिनसे जहाँगीर (१६०६-१६१८ तक) मिला था। इन सभी चित्रों के शीर्षक स्वयं बादशाह ने अपने हस्ताक्षरों से डाले हैं।

शाहजहां (१६२७-१६५६) स्वयं चित्रकला की अपेक्षा स्थापत्य में अधिक रुचि रखने वाला व्यक्ति था । इसके राजस्व-काल में रेखाओं की मजबूती सुरक्षित रखी गई, नए नए प्रयोग भी चलते रहे और बारीक से बारीक चित्रण का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया । राज-दरबार, यात्रा, राजदूतों द्वारा बादशाह के लिए लाई गई भेंट, नृत्य, धार्मिक मेले तथा प्रधान व्यक्तियों की मुख्य आकृतियाँ कुशलतापूर्वक आँकी गईं । इस शैली-चमत्कार के होते हुए भी इस समय की आकृति-अंकन में एक रूखापन का समावेश पाते हैं जो सम्भव है मुग़ल दरबार के वातावरण के परिणाम हों ।

औरंग ब (१६५६-१७०५) के राज्यारोहण के समय से मुग़ल शैली का ह्रास आरम्भ हो गया । चित्रकार राजकीय संरक्षण से वंचित कर दिये गये और वे अपनी जीविका के लिए बाज़ारू चित्र बनाने लग गये । यद्यपि कुछ चित्रकार अच्छे चित्र निर्माण करने में लगे रहे किन्तु अधिकांश उनकी कृतियाँ भी अतीत की छाया के समान' ही रह गईं । औरंगज़ेब-काल के तथा परवर्ती काल के चित्रों में केवल दरबारी दृश्य अंकित हुए हैं जिनमें शाहज़ादे सुरापान करते तथा नर्तकियों के बीच आमोद-प्रमोद मनाते दिखाए गये हैं । ऐसे चित्रों को देखकर कोई भी कला-पारखी मर्माहत हुए बिना नहीं रह सकता । इसके अतिरिक्त प्रेम-कथाओं से सम्बन्धित भी कुछ चित्र मिलते हैं जो पारसी और भारतीय शैली में बने हैं । वास्तव में तत्कालीन चित्रों में मुग़ल साम्राज्य के क्षयिष्णु चरित्र ही जैसे चित्रित हो उठा है ।

मुग़ल शैली के चित्र मुख्यतः दरबारी जीवन और प्रतिदिन के घटना-चक्र के दृश्य ही उपस्थित करते हैं । मुख्य आकृति-अंकन की कला इस काल में सर्वाधिक उन्नत हुई । गुजरात तथा राजस्थानी शैली में विशेषतः धार्मिक और साहित्यिक विषयों पर चित्र बनाये जाते रहे । इनके आधार काव्य, सूत्र, रामायण, महाभारत और वैष्णव कथायें थीं । उनमें आकृतियाँ और वस्तु-चित्रण एक शास्त्रीय परम्परा के अन्तर्गत लक्षित होते हैं और

वास्तविकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। जहाँ मुग़ल शैली के चित्रों में सभी विषयों का ग्रहण हुआ है वहाँ गुजराती और राजस्थानी शैली के चित्र धार्मिक और पौराणिक ही रहे हैं।

राजस्थानी शैली

कुमार स्वामी के कथनानुसार, १६वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक राजपूत चित्रकारों की कृतियों को संसार की श्रेष्ठ कलाकृतियों में एक आदरणीय स्थान है। इनमें भारतीय प्रतियों का विशुद्ध प्रदर्शन हुआ है। इन चित्रों का मूल उस भारतीय लोक-जीवन की आकांक्षाओं, काव्य, संगीत और नाट्य में है। वह कला प्रेम पर ही केन्द्रित है। प्रेम को यहाँ एकता का साधन और आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। प्रेमी राधा और कृष्ण के रूप में चित्रित किये गये हैं जो स्त्री-पुरुष के अनादि अनन्त सम्बन्ध के प्रतीक हैं और जहाँ अहर्निश घटने वाली घटनाओं को एक स्वर्गीय रूपों में प्रतिफलित किया गया है। राजस्थानी शैली के यह विशिष्ट चित्र हमें यह शिक्षा देते हैं कि जिसे हम अपने घर और अपने पारिवारिक जीवन में पाने में असमर्थ हैं, वह हमें अन्यत्र भी नहीं मिल सकता। स्वर्ग हमारी अनुभूतियों में ही प्रतिष्ठित है। यदि सौन्दर्य हमारी चिर-परिचित वस्तुओं से ओझल हो गया है तो वह हमें किसी अपरिचित और दूर देश स्थान में दिखाई पड़ेगा, यह दुराशामात्र है।

राजपूत शैली के चित्रकारों द्वारा आत्मार्पित हिन्दू नारी का हृदय अपने सम्पूर्ण भावोद्वेगों के साथ चित्रित हुआ है। उसमें समस्त नारी-सौन्दर्य की योजना कमलों जैसी दीर्घा आँखें (चित्र ८३), झूलती हुई वेणी, उन्मत्त वक्ष, पतली कमर, लाली लिये हुए हाथ और पैर।

राजस्थानी शैली के चित्रों में उनके प्रेरक सूत्रों को केवल वर्णनात्मक रूपों और रेखाओं में ही नहीं बाँधा गया है प्रत्युत उन्हें एक काव्य में परि-वर्तित किया गया है। चित्रों की ललित रेखाएँ मानों संगीत की मूर्च्छना

झंकृत करती हैं। रंगों का उपयोग प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है। लाल रंग प्रेम-भावना का द्योतन करता है। थल चित्रों ने भी प्रतीकों का रूप ग्रहण कर लिया है जिसमें प्रत्येक वृक्ष, लता, पुष्प, नदी, वर्षा, पशु, पक्षी सभी काव्य के अंग बन गये हैं।

राजस्थान शैली के चित्रों के विषय बहुरूप थ। उनमें लोक-कथाओं के सभी रूपों, जीवन के उल्लास, आनन्द और प्रेम तथा त्याग की सभी भावनाओं, कृष्ण सम्बन्धी कथाओं, रामायण, महाभारत के दृश्यों, ऋतुओं, वीरगाथाओं और रागमाला सम्बन्धी चित्रों का समावेश हुआ है।

पहाड़ी शैली

१८वीं शताब्दी में, पंजाब (हिमालय) के चित्रकारों ने एक शैली को जन्म दिया जिसे कला के इतिहासवेत्ता काँगड़ा शैली के नाम से जानते हैं। नीचे के मैदान की अशान्ति से दूर हिमालय के निभृत एकान्त में कला-साधनारत इन चित्रकारों ने मुग़ल शैली का अनुकरण करते हुए भी तत्कालीन हिन्दू चित्रों की काव्यचारुता को अपने चित्रों में प्रतिष्ठित किया। काँगड़ा शैली की कला को प्रेम-वासना की घनी अनुभूति अपवित्र न बना सकी है। सुन्दर ललित रेखाओं की गति हिमालय के क्रोड़ में बहने वाली निर्मल उज्ज्वल निर्झरियों की झलक देती है। रंग कोमल भावनाओं के समान ही लगाये गये हैं जो आँखों में शीतलता और मस्तिष्क को विश्रान्ति देते है। प्रकृति-चित्रण में हिमालय के वे शान्त पर्वत-प्रदेश चित्रित हैं जिनसे मनोरम प्रकृति-वैभव के बीच सुन्दर काठ के घर, वृक्ष, कुसुमित लताएँ और मधुर मंथर सरिताएँ झाँकती हुई दिखाई पड़ती हैं।

इस शैली में सर्वाधिक राधा और कृष्ण के अमर प्रेम का चित्रण हुआ है। इसमें उनके कलह, पुनर्मिलन, क्रीड़ा और नृत्य अंकित हुए हैं। काँगड़ा शैली के चित्रकारों ने पुराणों के विषय भी चित्रित किये हैं। इनमें कुछ सुन्दर चित्र रामायण की कथा और महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की

चित्र १००. कालान्तर में नेत्र-चित्रण.

ईरान
(१६वीं शताब्दी)

मुग़ल
(१७वीं शताब्दी)

काँगड़ा
(१८वीं शताब्दी)

जयपुर
(१८वीं शताब्दी)

चित्रकार : श्री ज० मु० अहीवासी.

कथा के सम्बन्ध में हैं । इनके अतिरिक्त स्थानीय महत्त्व के कुछ लोक-चित्र तथा पहाड़ी राजाओं की कुछ प्रतिकृतियाँ भी मिलती हैं। इस शैली के आरम्भिक चित्र जम्मू के समीप वशोली में निर्मित हुए किन्तु पीछे यह शैली नूरपुर, मण्डी, सकेत, काँगड़ा और दूसरी पहाड़ी रियासतों में प्रचलित हो गई । कांगड़ा शैली के चित्रों का सबसे बड़ा समय १८वीं शताब्दी है ।

आधुनिक प्रवृत्तियाँ

मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में प्रायः सभी सूबों के सूबेदार स्वतन्त्र हो गये, और ऐसा कहा जाता है कि चित्रकारों की बड़ी संख्या उन सूबों की राजधानियों में गई और इस प्रकार लखनऊ, हैदराबाद राजपूताना, गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड आदि कितने स्थानों में कला के केन्द्र बने । ऐसे प्रत्येक कला-केन्द्र के चित्रों की पहचान स्थानीय रीति-रिवाज और भाव-परम्पराओं के आधार पर की जा सकती है ।

तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों और यूरोपीय प्रभाव की वृद्धि के कारण भारतीय चित्रकला अपने चरम ह्रास तक पहुँच गई । कुछ वर्षों तक भारतीय चित्रकार यूरोपीय चित्रों की नकल पर बड़े व्यक्तियों की प्रतिकृतियाँ और धार्मिक चित्र बनाते रहे। यूरोपियन शैली के ऐसे भारतीय चित्रकारों के सर्वप्रथम प्रतिनिधि ट्रावनकोर के राजा रवि वर्मा थे ।

बंगाली चित्रकारों के एक छोटे दल ने (१९वीं शताब्दी), जिसके प्रधान श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे, यूरोपीय चित्रों की नकल से बचकर उन्होंने अपनी भारतीय परम्परा को अपनाया। यह स्कूल-शैली आज आधुनिक बंगाल शैली के नाम से विख्यात है और इसका उद्देश्य उस शैली का पुनरुत्थान था जो भारत के स्वर्णिम युगों में विकसित रही है।

बंगाल शैली के अतिरिक्त भारत में चित्रकला की और भी शैलियाँ हैं जिनमें बम्बई स्कूल का उल्लेख किया जा सकता है। समय और युग

के अनुसार बम्बई स्कूल ने अपनी अभिव्यक्तियों में आश्चर्यजनक विकास प्राप्त किया है। अजन्ता के चित्रों को देखिये और देखिये आज के अल्ट्रा माडर्न चित्रों को। मनोभावों को व्यक्त करने के ढंग में कितना अन्तर हो गया है। आज आप नवीनतम चित्रों की कोई प्रदर्शनी देखिए, आपका भावग्राही मन यह स्वीकार कर लेगा कि आप एक निराली वस्तु देख रहे हैं।

यह प्रसन्नता की बात है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार देश की कला, चेतना और संस्कृति को प्रवृद्ध व समृद्ध करने के लिए पर्याप्त रूप से चेष्टा कर रही है। १६५४ में ललित-कला एकेडमी जैसी महत्त्वपूर्ण संस्था की स्थापना इसका प्रमाण है।